शक्ति योग

POWER OF YOGA

लेखक : योगाचार्य विजय प्रकाश मिश्र (हठयोगी)

आभार

वाराणसी जोन के पुलिस महानिरीक्षक श्री हरभजन सिंह जी के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होनें अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर इस ग्रन्थ "शक्ति योग" का प्रकाशन सहज बना दिया। पुलिस विभाग में सक्रिय होते हुए भी आप सरल स्वभाव एवं समाजसेवी मनोव्रत के कारण पर्याप्त लोकप्रिय हैं और लोकमंगल कार्यों में सदा तत्पर रहते हैं। क्षेत्र के तमाम मांगलिक, सार्वजनिक कार्यों में आपकी सेवायें एवं सहयोग उल्लेखनीय हैं।

आप स्वयं योगाभ्यासी एवं योग के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हैं। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर ही इस ग्रन्थ को समाज में पहुंचाने का जो सहयोग किया उससे जनमानस को एक नई दिशा मिलेगी।

इस पुनीत कार्य के लिये मैं आपका ऋणी एवं आभारी हूँ।

- लेखक

शक्तियोग

लेखक

योगाचार्य विजयप्रकाश मिश्र

(एम०ए०, योग शिक्षा, बी०एच०यू०, राष्ट्रीय निर्णायक, योग चैम्पियन)

प्रेरक

योगिराज प्रो0 राजबली मिश्र

प्रकाशक

यौगिक क्रिया केन्द्र

बी0 1/150 जे0 अस्सी, वाराणसी

फो0नं0 (0542) 367017

* शक्तियोग

* लेखक
योगाचार्य विजयप्रकाश मिश्र

* प्रेरक
योगिराज प्रो0 राजबली मिश्र

* प्रकाशक
यौगिक क्रिया केन्द्र
बी० १/१५० जे० अस्सी, वाराणसी
फोन नं० (0542) 367017

* प्रथम संस्करण, दिपावली १६६१ (२०००)
* द्वितीय संस्करण, दिपावली १६६६ (२०००)

* मुल्यः- 50/ रूपये

* मुद्रक
राजकमल मुद्रणालय
अर्दली बाजार, वाराणसी फोन नं० 342386

विश्वविख्यात हठयोगी, प्रोफेसर पं० राजबली मिश्र जी महाराज

✻ अनुक्रम ✻

विषय **पृष्ठ संख्या**

भूमिका

अनादिकाल से हमारे ऋषियों द्वारा प्रयुक्त साधना पद्धति योग की चमत्कारी उपलब्धियों को देखते हुए आज सम्पूर्ण विश्व इस ओर आकर्षित है। मत-मतान्तरों अथवा सैद्धान्तिक विरोधों के बावजूद योग के विविध अंगों को निर्विवाद रूप से सभी द्वारा स्वीकार किया जाना न केवल इसकी अहमियत सिद्ध करता है बल्कि साधक के लिए इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। किन्तु खेद की बात है कि बहुधा लोग योग के एक अंग 'आसन' और उस में भी मात्र अंग संचालन को 'योग' मान लेते हैं।

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के आठ अंगों-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में आसन को तीसरे क्रम पर रखा है। इस प्रकार क्रमानुसार यम-नियम से आरंभ कर साधक समाधि तक पहुँचता है। साधना की यही चरमोपलब्धि संतप्त संसारी प्राणी को योग की ओर आकर्षित करती रही है।

प्रसन्नता की बात है कि योगिराज प्रो0 राजबली मिश्र जैसे साधक हमारे देश में उपलब्ध हैं जिनको योग साधना में अच्छी पैठ है। श्री मिश्र जी को योग

साधना ईश्वरीय कृपा से प्राप्त है और इन्होंने देश के अनेक आत्मकेंन्द्रित साधकों का सान्निध्य प्राप्त किया है। आपकी चमत्कारी उपलब्धियों से विश्व का प्रबुद्ध जन मानस दशकों से परिचित है। यौगिक शक्ति के माध्यम से हृदय की गति रोककर तथा आश्चर्यजनक शक्ति का प्रदर्शन कर आपने सभी को चमत्कृत कर दिया है। आपके प्रशिक्षण में अनेक साधक दीक्षित होकर देश के विविध अंचलों में साधनारत रहकर जनमानस को योग की ओर आकर्षित कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ शक्ति योग के लेखक श्री विजयप्रकाश मिश्र स्वंय उन्ही प्रशिक्षण प्राप्त साधकों में से एक है बाल्यकाल से ही इन पर योगिराज की कृपा रही है और बड़े मनोयोग से इन्होंने इसका अभ्यास किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने योगिराज श्री मिश्र जी से प्रेरित होकर उन्ही के निर्देशन में योग के विविध पक्षों का प्रामाणिक एवं प्रयोगजनित उद्घाटन किया है।

संस्कृत साहित्य में योगपरक अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है किन्तु आज उनकी सूत्रोत व्याख्या साधक के लिए सर्वथा अग्राह्य है। केवल पढ़ने और भाषण देने के अतिरिक्त इन ग्रन्थों का आज व्यवहारिक प्रयोजन सम्भव नही रह गया है। ऐसी स्थिति में मिश्र जी जैसे साधकों के अनुभूत प्रयोगों एवं विचारों से लाभ उठाना

ही अपेक्षित है। इस पुस्तक में दी गयी समस्त सामग्री क्रमवार न होकर भी साधना के क्षेत्रा में लगे हुए साधक को उसकी रूची के अनुसार ग्राहीय एवं प्रेरक है। योगासन के विविध चित्र उनकी विधियाँ एवं लाभ का उल्लेख कर लेखक ने सराहनीय कार्य किया है पुस्तक के अन्त में योगिराज के चमत्कारिक प्रदर्शनों के चित्र साधना की उपलब्धि का प्रमाण प्रस्तुत करने के साथ ही साधक को उत्साहित करने के लिए अवश्य ही सम्बल प्रदान करेंगे।

आशा है यह पुस्तक योगिराज की अन्य कृतियों की भाँति पाठकों द्वारा पसन्द की जायेगी।

वाराणसी

जगदीशचन्द्र मिश्र

ग्रन्थ परिचय

हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक को योगमार्तण्ड पं० राजबली मिश्र जी अपने अनुभवों एवं आत्मज्ञान के आधार पर दूसरी बार पाठकों के समक्ष अर्पित कर रहे हैं। आशा है कि इनकी अन्य पुस्तकों की भाँति 'शक्ति योग' भी लोक कल्याणार्थ लाभप्रद होगी। इसमें आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा, तत्त्वज्ञान, चक्रज्ञान आदि का विधिवत् वर्णन किया गया है। योग का शायद ही ऐसा कोई विषय हो जो कि इस पुस्तक में न हो। अन्तिम अध्याय में शक्ति योग का वर्णन है जो कि इस ग्रन्थ का परम लक्ष्य है।

आसनों का अभ्यास योगिराज जी ने अपने या अपने शिष्यों के फोटोग्राफ द्वारा समझाया है। यह ग्रन्थ इसलिए लाभप्रद है कि योगिराज जी ने जो कुछ कलमबद्ध कराया है, उनका अपना अभ्यास, स्वानुभव एवं आत्मविश्वास है जिस का अभ्यास कर बहुतों ने लाभ उठाया है। योगिराज जी ने प्रत्येक आसन और प्राणायाम, यौगिक चमत्कार की उपलब्धियां दिखाकर बताया है कि मनुष्य में कोई ऐसा गुण नहीं है जो कि योग के बल पर न प्राप्त कर सकें। स्वामी जी ने आसनों द्वारा रोग निवारण का भी विधान बताया है।

आदर्शो एवं चमत्कारों से परिपूर्ण होने के कारण 'शक्तियोग' अपनी ओर आकर्षित करने की विलक्षण क्षमता रखता है। इस पुस्तक में साधना के बल पर असम्भव कार्य करने के तरीके बतलाये गये हैं, जैसे—हृदय गति रोकना, नाड़ी गति रोकना, सीने पर से भारयुक्त ट्रक व बस पार करना, हाथी के साथ रस्सा—कशी करना आदि आश्चर्यजनक कार्य 'शक्तियोग' के बल पर करना। इस कार्य को देखकर बहुधा लोगों ने जादू माना और तरह—तरह से खोद—विनोद किया, पर ऐसा होता नहीं। योग के जिज्ञासुओं को मैं बता दूँ कि यह शक्ति योगिराज को योग द्वारा ही प्राप्त हुई है, जो कुछ ऋषियों—महात्माओं के आशीर्वाद से प्राप्त किया है उसी का इस

'शक्तियोग' पुस्तक में संग्रह किया गया है। जो इच्छुक योग साधक हैं। वे इस शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। योगिराज के अनेकों शिष्य हैं जो कि योग की गहरी साधना कर एवं योगाभ्यास कर इनके अधिकांश गुणों को अपना चुके हैं। आज भी विश्व के कोने–कोने से महानुभाव एवं श्रेष्ठजन आकर आपके आश्रम में योग का गहन अध्ययन एवं अभ्यास कर रहे हैं।

'शक्तियोग' के जिज्ञासुओं को यह बात बता देना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ कि योग अत्यन्त ही व्यापक और सूक्ष्म साधना पद्धति है। इस पद्धतिं पर ग्रन्थों का सर्वथा अभाव है। जो कुछ ऋषियों–महात्माओं के आशीवार्द से प्राप्त हुआ है और उस पर लगन–पूर्वक चलकर जो योगिराज को अनुभूति हुई है वही सब बातें इस पुस्तक में हैं। हो सकता है कि कुछ स्थलों पर आपको आश्चर्य हो और आप सहसा विश्वास न कर सकें, किन्तु आप स्वयं अभ्यास करेंगे तो यह बातें आप में भी चरितार्थ होंगी। महर्षि पतंजलि के अनुसार आप अपने को जहाँ भी स्थिर रखना चाहते हों उसके लिए यत्नपूर्वक अभ्यास करें। ईश्वर ने जितने भी शरीर पिण्डों का निमार्ण किया है। सब में सारी सम्भावनायें विद्यमान हैं। आवश्यकता उनके उपयोग करने की है।

बहुधा लोग कहते हैं कि योगाभ्यास बहुत कठिन है अतः वे अभ्यास नहीं कर सकते। उन महानुभावों को मेरी नेक सलाह है कि उत्थान सचमुच सरल नहीं होता, किन्तु कठिनाइयों के भय से उसे असम्भव मान बैठना उचित नहीं है। जीवन भर हम अपने बहुमुखी विकास के लिए कितना श्रम करते हैं। हम अपने जीवन में जो भौतिक प्रगति करते हैं क्या वह आसान है? हम यह मानते हैं कि सामान्य प्राणी कठिन आसन नहीं कर सकता किन्तु उसे यह मानकर नहीं बैठ जाना चाहिये कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। इसीलिए इस पुस्तक में मैंने कठिन आसनों एवं कष्टसाध्य क्रियाओं को नहीं दिया है। इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि यहाँ ऐसी ही क्रियायें दी जायें जो सहज ग्राह्य एवं सद्यः फलदायिनी हों। फिर भी जिज्ञासु को अभ्यास तो करना ही होगा।

इस पुस्तक में गूढ़तम विषयों तथा कुछ महत्वपूर्ण योगासनों की व्याख्या के साथ ही कुछ कार्यक्रमो के चित्र, कुछ विशिष्ट लोगों की सम्मतियाँ भी दी गयी हैं जिसका अर्थ आत्मश्लाघा नहीं बल्कि अपने आत्मीयजनों के आग्रह पर देना पड़ा है, जिनके बार–बार कहने पर लोकमंगल की भावना से यह पुस्तक लिखनी पड़ी है। जो सज्जन योगाभ्यास का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह ग्रथं अवश्य हीं उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

योगाचार्य विजयप्रकाश मिश्र

योगिराज जी का संक्षिप्त परिचय

बचपन में ही श्रेष्ठजन तथा गुरुओं से आदर्श भारतीय चरित्रों के प्रति विशेष जानकारी प्राप्त करने की अभिरुचि ने योगिराज को समवयस्क बालकों से अलग कर दिया। परिणाम स्वरूप विद्यालयीय शिक्षा में आप का मन न लगा और किशोरावस्था में ही बार–बार देश के विभिन्न पर्वतीय जंगली अञ्चलों एवं धर्मकेन्द्रों में अपनी ज्ञान पिपासा शान्त करने के निमित्त भटकते रहे।

इसी बीच प्रो० राममूर्ति तथा अन्य कुछ साधकों की चर्चाओं ने आपके मन में भी कुछ आश्चर्यजनक कृत्य करने के लिए इतना प्रेरित किया कि केवल दृढ़ संकल्प लेकर आपने भारी भीड़ के बीच यौगिक कार्यक्रम देने आरम्भ कर दिये और इसकी सफलता तथा दर्शकों की प्रशस्ति से उत्साहित होकर आपने देश के अनेक भागों में वर्षो तक प्रदर्शन किया। इसी दौरान हिमालय की उपत्यका में इन्हें प्रतीक रूप में जिस गुरु के दर्शन हुए उन्होनें प्रसन्न होकर स्वर की दुलर्भ दीक्षा दी। यह संभवतः सन् १९५० की घटना है।

स्वर शक्ति की साधना ने आपका मार्ग प्रशस्त कर दिया और तभी से आप मानवता के कल्याण हेतु देश–विदेश में घूम रहे हैं। अपनी चमत्कारपूर्ण यौगिक क्रियाओं को प्रस्तुत करते हुए आप सदैव प्रेरणा देते हैं कि मानव थोड़ा प्रयास और अभ्यास कर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। इसके प्रमाण में ईश्वर की कृपा से योगिराज को ही प्रस्तुत करता हूँ। आप आम आदमी की ही भाँति पंचतत्वों से निर्मित हैं किन्तु स्वर साधना के बल पर आपसे जो कुछ हो जाता है, सामान्य प्राणी ही नहीं प्रबुद्ध वर्ग और अच्छे–अच्छे पहलवान चकित रह जाते हैं। किन्तु उस समय इन्हें स्वर अथवा शारीरिक शक्ति का कोई अनुभव नहीं था। वह एक उमंग मात्र थी जो रह रह कर आपके मन को उकसाती थी। आप बिना किसी पूर्व अभ्यास के भारी भीड़ के बीच वजनी नाल उठाना, बाल में बाधकर भार

उठाना, दाँत से कार खींचना, पीछे से बैलगाड़ी को रोक देना, आटाचक्की की चालू मशीन को रोक देना, सीने पर पत्थर तोड़वाना, वर्षाकाल में देर तक पानी में डूबे रहना, बढ़ी गंगा को पार कर जाना। इसी प्रकार के बहुत से कार्य जो भी जी में आता करके दिखा देते थे। इसी प्रकार कुछ अनहोनी कर डालने की भावना आपके मन में उठती और घर छोड़कर चारो ओर घूमते रहते। आपके लिए कोई भी कार्य मुश्किल नहीं था अतः अपनी उमंग रोकने का सवाल ही नहीं था।

आहार के मामले में आप निरंकुश थे। जब जो जी में आता खाने–पीने का दावा कर बैठते थे। एक बार में बीस किलो दूध, सेर दो सेर घी पी जाते थे। इस यायावरी अवधि में भारत भ्रमण की योजना बनाई। इसी दौरान ईश्वर की कृपा से आपको महान योगियों और साधु–महात्माओं के भी दर्शन हुए, इन्हीं महात्माओं में एक वयोवृद्ध योगी ने अष्टभुजी की एकान्त पहाड़ी पर सर्वप्रथम आपको दर्शन दिये और स्वर शक्ति की साधना बतायी। फिर तो स्वरशक्ति की साधना के प्रति आपकी आस्था गहरी होती गयी।

कहने का मतलब योग साधना के बल पर ही आपको जो कुछ प्राप्त हुआ है वह केवल मात्र शक्ति है। योग एक ऐसी साधना है जिसके माध्यम से सूर्य–चन्द्र इत्यादि ग्रह शरीर में स्थित सुक्ष्मतम नाड़ियों को प्रभावित कर उनकी सुप्त शक्ति को जागृत करते हैं। स्वर साधना के बल पर एकनिष्ठ होकर साधना करने वाला व्यक्ति ऐसी–ऐसी उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

योगाचार्य विजयप्रकाश मिश्र

शक्ति योग क्या है ?

शक्ति योग के बारे में हम अपने पाठकों को बता दें कि मानव को शक्ति प्रकृति प्रदान करती है और वह शक्ति हमारे शरीर में कैसे आती है यह एक गूढ़ विषय है परन्तु संक्षेप में हम बता दें कि सर्व प्रथम भगवान् और प्रकृति के मिलन से प्राण की उत्पत्ति होती है। प्राण हमारे फुफ्फुस पर नियन्त्रण करता है। फुफ्फुस ह्रदय पर और ह्रदय रक्त पर और रक्त का प्रभाव मस्तिष्क पर, मस्तिष्क मन पर, मन ज्ञान की उत्पत्ति करता है। ज्ञान ही शक्ति का आविष्कार करता है। शक्ति ही हमारे जीवन में सबसे उपयोगी है। अगर मानव में शक्ति न रहे तो उसका जीना निरर्थक समझ में आता है और शक्ति को हम अपने शरीर में संचित कर उसका लाभ उठाते हैं। शक्ति तो थोड़ा बहुत हर मानव में पायी जाती है परन्तु कुछ अलौलिक शक्ति भी होती हैं जैसा के आप आगे पुस्तक में पायेंगे, वह अलौलिक शक्ति कोई जादू या करिश्मा नहीं है, यह शक्ति हर मानव के पास है उसका सही इस्तेमाल कर योगाभ्यास मुद्रा एवं प्राणायाम के बल पर ही लाभ प्राप्त किया जाता है। शक्ति आ जाने में कोई आशंका नहीं है किन्तु वैसी आप में लगन व ध्यान होना चाहिए।

पाठक गण ध्यान दें कि आप भी ह्रदय गति रोक कर विज्ञान को चुनौती दे सकते हैं, और आप भी बड़े कार्यक्रम जैसे सीने पर २० टन का बोझ पार करना आदि आश्चर्य जनक कार्य कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए हमें योग का ही सहारा लेना पड़ेगा क्योंकि योग में ही ऐसी शक्ति है जो कि मानव जगत में हो रहे हर कार्य कलाप को आसानी से कर सकता है और हमें इसके लिए अपने आपको बहुत ही कुशलता एवं ध्यान द्वारा तैयारी करनी पड़ेगी, और यह तैयारी हम केवल मात्र योग द्वारा ही कर सकते हैं। इसके लिए हमको पहले योग को समझना चाहिए कि योग क्या है? इसमें कितने अंग हैं। तो आइये हम आपको योग के पहले अध्याय से आपका परिचय कराकर योग के गूढ़ विषय की ओर ले चलते हैं ताकि सभी पहलुओं

से होते हुए जब आगे बढेंगे, तभी आप उनकी शक्ति को समझ और प्राप्त कर पायेंगे। पहले हम योग को देखें उसके बाद अष्टांग योग के हर अंग को अलग–अलग देखें इसके बाद प्राणायाम मुद्रा षट्कर्म आदि को समझें व करें तब ही हम शक्तियोग का सार समझ पायेंगे।

शक्ति योग में अनेक चमत्कारी कार्य हैं जो कि पाठक इस योग विषय को करने के बाद खुद करने की क्षमता रख सकते हैं। तो आइये शक्ति योग के पहले हम योग का अध्ययन व अभ्यास करते हुए शक्तियोग तक बढ़ें।

योग क्या है ?

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध':

शब्दार्थ–योग–योग, चितवृत्तिनिरोध–चित्त की वृत्तियों को रोकना।

अर्थः– चित्त की वृत्तियों का निरोध (सर्वथा रुक जाना) योग है।

योग के सम्बन्ध में फैली हुई अनेक भ्रान्तियों का निवारण करके उसको समझा देना आवश्यक है। मोटे शब्दों में योग स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् आत्मतत्व से प्रकाशित चित्त अहंकार इन्द्रियों और तन्मात्राओं द्वारा स्थूलभूत और विषयों की वृत्तियों द्वारा बहिमुर्ख होना अर्थात् हमारी आपकी जितनी वृत्तियाँ कम होती जायेंगी उतना ही रजः और तमः की मात्रा घटती जायेगी। अगर कोई भी वृत्ति न रहे तो शुद्ध परमात्मा स्वरूप शेष रह जाता है। हम कुल मिलाकर योग का मुख्य अर्थ यही कहेंगे कि योग शब्द का अर्थ हमारे गणित में होता है जोड़ना यानि मिलन। हमारी आत्मा और परमात्मा के मिलन की कोशिश को ही योग कहते हैं।

योग का स्वरूप बतलाते हुए सारे संसार से निर्मल चित्त को निरोध अर्थात् जो बाहर की ओर चित्त की वृत्तियाँ जाती हैं उन्हें सांसारिक विषयों से हटाकर उससे उल्टा अपने कारण चित्त में लीन कर देना योग है।

योग शब्द की हम संक्षेप में परिभाषा करके उसके फल बतलाते हैं।

फलः– 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।'

तदा = उस समय द्रष्टुः = द्रष्टा की, स्वरूपे = अपने रूप में, अवस्थानम् = स्थिति हो जाती है।

जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

'वृत्तिसारूप्यमितंरत्र'

इतरत्र = दूसरे समय में (द्रष्टा का) वृत्तिसारूप्यम् = वृत्ति के सदृश

स्वरूप होता है।

जब तक योग साधना के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता तब तक द्रष्टा चित्त की वृत्ति के ही अनुरूप अपना स्वरूप समझता रहता है। उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। अतः चित्त वृत्ति निरोध रूप योग आवश्यक कर्त्तव्य है।

'वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा क्लिष्टाः।।'

क्लिष्टाक्लिष्टाः—क्लिष्ट और अक्लिष्ट, वृत्तयः = वृत्तियाँ, पञ्चतय्यः = पाँच प्रकार की होती हैं।

यह चित्त की वृत्तियाँ आगे वर्णन किये जाने वाले लक्षणों के अनुसार पाँच प्रकार की होती है तथा हर प्रकार की वृत्ति के दो भेद होते हैं, एक तो क्लिष्ट यानी अविधादि क्लेशों को पुष्ट करने वाली और योग में विघ्न रूप होती हैं तथा अक्लिष्ट यानि क्लेशों का क्षय करने वाली और योग साधन में सहायक होती हैं। साधक को चाहिए कि इस रहस्य को भली—भाँति समझकर पहले अक्लिष्ट वृत्तियों से क्लिष्ट वृत्तियों को हटाये फिर उन अक्लिष्ट वृत्तियों से क्लिष्ट वृत्तियों को हटाये फिर उन अक्लिष्ट वृत्तियों का भी निरोध करके योग सिद्ध करे।

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, (१) प्रमाण (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निद्रा (५) स्मृति।

प्रमाणः— प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणनि।

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमन ये तीन प्रमाण वृत्ति हैं।

१. प्रत्यक्ष प्रमाण—

बुद्धि मन और इन्द्रियों को जानने में आने वाले जितने भी पदार्थ हैं उनका अन्तःकरण और इन्द्रियों के साथ बिना किसी व्यवधान के सम्बन्ध होने से जो भ्रान्ति संशय रहित ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष अनुभव से होने वाली प्रमाण वृत्ति है।

२. अनुमान प्रमाण—

किसी प्रत्यक्ष दर्शन के सहारे युक्तियों द्वारा जो अप्रत्यक्ष पदार्थ के

स्वरूप का ज्ञान होता है वह अनुमान से होने वाली प्रमाण वृत्ति है।

३. आगम प्रमाण–

वेद शास्त्र और महान पुरुषों के बचन को आगम कहते हैं। जो पदार्थ मनुष्य के अन्तःकरण और इन्द्रियों कें प्रत्यक्ष नहीं हैं एवं जहाँ अनुमान की भी पहुँच नहीं है उसके स्वरूप का ज्ञान वेद, शास्त्र और महान पुरुषों के वचनों से हो सकता है। वह आगम से होने वाली प्रमाण वृत्ति है।

विपर्ययः– विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् तद्रूप प्रविष्ठम्।।

किसी भी वस्तु के असली स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना यह विपरीत ज्ञान ही विपर्यय वृत्ति है। जिन इन्द्रिय आदि द्वारा वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होता है उन्हीं से विपरीत ज्ञान भी होता है। यह मिथ्या ज्ञान भी कभी–कभी भोगों में वैराग्य करने वाला हो जाता है। जैसे भोग्य पदार्थ की क्षणभंगुरता को देखकर अनुमान करके या सुनकर उनको सर्वथा मिथ्या मान लेना योग–सिद्धान्त के अनुसार विपरीत वृत्ति है क्योंकि यह परिवर्तनशील होने पर भी मिथ्या नहीं है तथापि यह मान्यता भोगों में वैराग्य उत्पन्न करने वाली होने से अक्लिष्ट है।

चित्त का धर्मरूप विपर्यय वृत्ति अन्य पदार्थ है तथा पुरुष और प्रकृति के संयोग की कारणरूपा अविद्या उससे सर्वथा भिन्न है।

विकल्पः–

'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः'

केवल शब्द के आधार पर बिना हुए पदार्थों की कल्पना करने वाली जो चित्त की वृत्ति है, वह विकल्पवृत्ति है। यह भी यदि वैराग्य की वृद्धि में हेतु योग साधनों में श्रद्धा और उत्साह बढ़ाने वाली तथा आत्मज्ञान में सहायक हो तो अक्लिष्ट है अन्यथा क्लिष्ट है।

मानव जो नाना प्रकार का संकल्प आगम वृत्ति से सुनी–सुनाई बातों पर करता है उन सब को विकल्प वृत्ति के ही अभाव समझना चाहिए।

निद्राः–

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्राः

जिस समय मनुष्य को किसी भी विषय का ज्ञान नहीं रहता, केवल मात्र ज्ञान के अभाव की ही प्रतीति रहती है, वह ज्ञान (अभावज्ञान) जिस चित्त वृत्ति के आश्रित रहता है, वह निद्रा है। निद्रा भी चित्त की वृत्ति विशेष है, तभी तो मनुष्य गाढ़ी निद्रा से उठकर कहता है कि मुझे आज ऐसी गाढ़ निद्रा आयी जिससे किसी बात की कोई खबर नहीं रही। इस स्मृति वृत्ति से ही यह सिद्ध होता है कि निद्रा भी एक वृत्ति है नहीं तो जगने पर उसकी स्मृति कैसे होती।

स्मृतिः—

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः—

स्मृति वृत्ति भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती है जिस स्मरण से मनुष्य को भोगों में वैराग्य होता है तथा जो योग साधना में श्रद्धा और उत्साह बढ़ाने वाला एवं आत्म ज्ञान में सहायक है वह अक्लिष्ट है।

उपर्युक्त प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा इन चारों प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आये हुए विषयों के जो संस्कार पड़े हैं उनका पुनः किसी निमित्त को पाकर स्फुटित हो जाना ही स्मृति है।

तो इस तरह हमने योग का संक्षिप्त (सार में) अर्थ समझाने की कोशिश की है। आशा है कि आप को थोड़ा लाभ मिला होगा।

ज्ञान योग

बिनु सतसग बिवेक न होई।।

गोस्वामी तुलसी दास की यह अर्द्धाली यहाँ सिद्ध करती है कि ज्ञान हमें कैसे प्राप्त हो सकता है अर्थात् बिना सत्संग समागमसे कोई ज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता। किन्तु सांसारिक ज्ञान को लेना ही लोग ज्ञान कह डालते हैं पर ऐसा होता नहीं क्योंकि ज्ञान योग तब तक नहीं समझेंगे जब तक स्थूल और सूक्ष्म, करण और कारण, शरीर इन्द्रियों, मन, अहंकार और चित्त से परे गुणातीत शुद्ध परमात्मा का ज्ञान नहीं होगा, संशय निवारण रहित पूर्ण रूप से जान लेता ही ज्ञान योग कहलाता है।

सभी जीवात्मायें खेल कर रही हैं, कोई जान बूझकर तो कोई बिना जाने। वैज्ञानिक यह सिद्ध करने के लिए लगे हैं कि मृत्यु के बाद जीवन होता है। बाल की खाल खींच रहे हैं। छोटी सी बात के लिए कितनी उछल कूद मचा रहे हैं, सोचने के लिए दूसरी ऊँची और भी कितनी बातें हैं। 'मेरी मृत्यु होगी' यह कैसी भ्रांत कल्पना है! कोई भी मनुष्य अपने स्वयं के नाश की कल्पना नहीं कर सकता। अमरत्व का भाव प्रत्येक मनुष्य में अन्तर्निहित है।

जहाँ कहीं जीवन है वहाँ मृत्यु भी है। जीवन मृत्यु की छाया है और मृत्यु जीवन की। जीवन और मृत्यु के बीच की रेखा इतनी सूक्ष्म है कि उसका निश्चयात्मक बोध और धारण दुस्साध्य है। जो नियम हमारे सांसारिक जीवन में लागू होता है वही हमारे धार्मिक जीवन तथा विश्व–जीवन में भी लागू होता है वह एक और सार्वभौम है।

मन के द्वारा हमें वस्तुओं का ज्ञान होता है। केवल गुण विशिष्ट वस्तुयें ही ज्ञात और ज्ञेय की परिधि के भीतर आ जाती हैं। जिसका कोई गुण नहीं, जिसकी कोई विशेषता नहीं, वह अज्ञात है। प्रत्येक जीवात्मा मानो एक वृत्त में भ्रमण् करता है और उसे वह मार्ग तय करना ही होगा। कोई भी जीवआत्मा इतना निम्नगामी नहीं हो सकता उसे एक न एक दिन ऊपर

उठना ही होगा।

भले वही वह पहले एकदम नीचे जाता दिखे पर वृत्त–पथ को पूरा करने के लिए उसे ऊपर की दिशा में उठना ही पड़ेगा, हम सभी एक केन्द्र से निक्षिप्त हुए हैं और वह केन्द्र है परमात्मा। अपना–अपना वृत्त पूरा करने के बाद हम सब उसी केन्द्र में वापस चले जायेंगे जहाँ से हमने प्रारम्भ किया था।

आत्मा एक ऐसा वृत्त है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है, पर जिसका केन्द्र इसी शरीर में है। मृत्यु का होना यानी शरीर का नाश केन्द्र का स्थानान्तरण मात्र है। परमात्मा एक ऐसा वृत्त है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है और जिसका केन्द्र सर्वत्र है जब हम शरीर के इस केन्द्र से बाहर निकलने में समर्थ हो सकेंगे तभी हम परमात्मा की (अपने वास्तविक स्वरूप की) उपलब्धि कर सकेंगे।

ज्ञान में दुर्विचार नहीं होता, पर इसका अर्थ यह नहीं कि दुर्विचारों से घृणा करता है। इसका मतलब यह है कि ज्ञान दुर्विचारों से परे की अवस्था है, अर्थात् ज्ञानी किसी का नाश नहीं करना चाहता परन्तु वह उसकी सहायता के लिए तत्पर रहता है। सभी दुर्विचारों से बचता हुआ सद्विचार रखना ही असली ज्ञान है। ज्ञान सभी सांसारिक कर्मों को त्याग देने की शिक्षा देता है पर यह नहीं कि उसमें से परे हो जाय बल्कि यह कहता है कि संसार में रहना पर उसका होकर नहीं।

ज्ञान हमें कैसे होता है इस बारे में यही ठीक है कि ज्ञान, मन से उत्पन्न हुआ है जिसका कोई गुण नहीं है जिसकी कोई विशेषता नहीं है वह अज्ञात है। यदि आपको किसी वस्तु का ज्ञान है तो उसके लिए तर्क क्यों करेंगे, तर्क हमेशा अज्ञानी करते हैं हमें यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जीवन में कुछ ऐसी वस्तुयें हैं जिन्हें हम नहीं जांनते पर उसका ज्ञान हमें हो सकता है। अपने अज्ञान के कारण ही उसे नहीं जानते परन्तु कुछ ऐसी भी बातें हैं जिसका ज्ञान हमें कभी भी नहीं हो सकता क्योंकि वे ज्ञान के उच्चतम स्पन्दनों से भी उच्च हैं। मैं जानता हूं कि परमात्मा क्या

है? पर मैं तुम्हें बतला नहीं सकता, या तो मैं नहीं जानता, अतः इस कारण आपको नहीं बतला सकता। परन्तु हमें आपको चाहिए कि खोज बन्द करें और स्वयं ही परमात्मा है अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जायें।

श्री वशिष्ठ जीने ज्ञान की सात भूमिकायें बतलायी हैं।

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा।।
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात् ततोऽसंसक्तिनामिका।
पदार्था भावना षष्ठी सप्तमी तूर्यगा स्मृता।

योगवाशिष्ठ
उत्पत्ति ११८/५–६

(१) शुभेच्छा (२) विचारणा (३) तनुमानसा
(४) सत्त्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पद्धार्थ भावना
(७) तुर्यगा

शुभेच्छा—समस्त अशुभ इच्छाओं जैसे—चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, बलात्कार, हिंसा, अभक्ष्य भोजन, दुर्व्यसन आदि निषिद्ध कर्मो का मान वाणी और शरीर से त्याग करना अपने सुख के लिए किसी से भी धनादि पदार्थों के लिए चायना करना अपना स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा रखना ही शुभेच्छा कहलाता है।

विचारणा—शास्त्रों का अध्ययन मनन और सत्पुरुषों के संग तथा विवेक वैराग्य अभ्यास पूर्वक सदाचार में प्रवृत्त होना यह विचारणा नाम की भूमिका कही जाती है। उपर्युक्त प्रकार से सत्पुरुषों का संग सेवा एवं आज्ञा—पालन से सत् शास्त्रों के अध्ययन मन से तथा दैवी सम्पदा रूप सद्‌गुण—सदाचार के सेवन से उत्पन्न हुआ विवेक ही विचारणा है।

तनुमानसा—तनुमानसा का अभिप्राय यह है कि आसक्ति और ममता के अभाव से सतपुरुषों के संग और सत्‌शास्त्रों के अभ्यास से तथा विवेक वैराग्य पूर्वक निदिध्यासन ध्यान के साधन से साधक की बुद्धि—तीक्ष्ण हो जाती है तथा उसका मन शुद्ध निर्मल सूक्ष्म और एकाग्र हो जाता है जिससे

उसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मतत्व को ग्रहण करने की योग्यता अनायास ही प्राप्त हो जाती है, इसी को तनुमानसा कहते हैं।

सत्वापत्ति—श्रवण, मनन और तनुमानसा निदिध्यासन भूमिकाओं के अभ्यास से चित्त के सांसारिक विषयों से अत्यन्त विरक्त हो जाने के अनन्तर उनके प्रभाव से आत्मा का शुद्ध तथा शुद्ध सत्यस्वरूप परमात्मा में विलीन हो जाना सत्वापत्ति कहा गया है।

असंसक्ति—परम वैराग्य और परम उपरति के कारण उस ब्रह्म सक्ति ज्ञानी महात्मा का इस संसार और शरीर से अत्यन्त सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है इसलिए इस पाँचवीं भूमिका को असंसक्ति कहा गया है। ऐसे पुरुष का संसार में कोई भी प्रयोजन नहीं रहता अतः वह कर्म करने या न करने के लिए बाध्य नहीं है।

गीता में भगवान ने कहा है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन्।
न चास्व सर्व भूतेषु काश्चिदर्पव्यपाश्रयः॥

उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इसका किञ्चित् मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता।

पदार्थभावना— उपुर्यक्त पाँचो के अभ्यास से उस ज्ञानी महात्मा की अन्तरात्मा के प्रभाव से उसके अन्तःकरण में संसार के पदार्थो का उत्पन्न अभाव सा हो जाता है जिससे उसे बाहर भीतर के किसी भी पदार्थ का स्वयं ज्ञान नहीं होता दूसरों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक चिरकाल तक प्रेरणा करने पर ही कभी किसी पदार्थ का भान होता है, इएलिए उसके अन्तःकरण की पदार्थ भावना नाम की छठी भूमिका हो जाती है।

तुर्यगाः—तुर्यगा भूमिका अपने आप छठीं के अभ्यास के दौरान सिद्ध हो जाती है। उस ब्रह्म वेत्ता ज्ञानी महात्मा पुरुष के हृदय में संसार का और शरीर के बाहर भीतर के लौकिक ज्ञान का अत्यन्त अभाव हो जाता है क्योंकि उसके मन बुद्धि ब्रह्म में तद्रूप हो जाते हैं, इस कारण उसकी व्युत्थानावस्था

तो न स्वतः होती है और न दूसरों के द्वारा प्रयत्न किये जाने पर ही होती है।

अस्तु आइये ज्ञान को हम दूसरे कोण से देखते हैं। ज्ञान को हमने उपरोक्त छः खण्डों में विभक्त करके समझने की कोशिश की हैं। मुख्यतः ज्ञान दो प्रकार का होता है एक फलस्वरूप ज्ञान और दूसरा साधन रूप ज्ञान। यहाँ ज्ञान निष्ठा कहने का अभिप्राय योगनिष्ठा के समान हो साधनरूप ज्ञान की प्राप्ति होती है चाहे उसे तत्वज्ञान कहिए चाहे परमात्मा का बोध यह सभी साधनों का फल है।

गीता में ज्ञान को परम पद, परम गति, निर्वाण, ब्रह्म, अमृत आदि नाम से कहा गया है, वही परमात्मा की प्राप्ति है, यही समस्त साधनों का अन्तिम फल है। सांख्य अर्थात् ज्ञान योग को समझने के लिए थोड़ा प्रकाश डाला जाता है जो निम्नवत है।

(१) चर–अचर, जड़ और चेतन के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह सब ब्रह्म ही है।

(२) जो कुछ दिखाई पड़ रहा है वह क्षणभङ्गुर और नाशवान् है। अनित्य होने के कारण वास्तव में कुछ नहीं है। जो कुछ अखण्ड सत्य के रूप में शेष रह जाता है वही ब्रह्म है।

(३) आत्मा क्या है? जो जड़ चेतन रूप में प्रतीत होता है वही आत्मा है। आत्मा से अलग कोई वस्तु नहीं है।

(४) निष्ठाओं का अन्तिम फल एक है। मन और बुद्धि के द्वारा जाना नहीं जा सकता है। ज्ञान निष्ठा गीता जी में कहीं सांख्य तो कहीं संन्यास के नाम से भी बतलायी गयी है। इस प्रकार अभ्यास करते–करते जब सबका अभाव हो जाता है तब जो अविनासी नित्य, अक्रिय निर्विकार और सनातन सत्य वस्तु शेष रह जाती है वही आत्मा है। यही आत्मा ही सबका द्रष्टा और साक्षी है।

मन और बुद्धि से परे हो जाने के कारण उसे समझना या समझाना असम्भव है। जिसे वह स्थिति प्राप्त हो जाती है वही जान सकता है फिर

भी शब्दों के द्वारा उसका वर्णन असम्भव है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। (गीता४/२४)

अर्थ—जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म हैं और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है—उस ब्रह्म कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किया जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

साधारणतया ध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करने पर साधक को चार वस्तुएँ जान पड़ती हैं—मन बुद्धि, जीव और ब्रह्म। साधना प्रारम्भ करते ही कुछ स्थूल दृश्य प्रतीत होता है वह सब भुलाकर मन, बुद्धि और अपने—आपको सच्चिदानन्दघन ब्रह्म से तद्रूप करने का अभ्यास करना चाहिए-और अनुभव करना चाहिए कि भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सबको ब्रह्ममय अनुभव करना चाहिए। ऐसा करने से क्रमशः मन, बुद्धि और जीव परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं और केवल शेष परमात्मा ही परमात्मा रह जाता है।

कर्मयोग

कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है। 'कृ' का अर्थ है करना। जो कुछ किया जाता है वही कर्म है।

कर्मयोग शब्द से हमारा मतलब केवल कार्य है। मानव जाति का चरम लक्ष्य ज्ञान लाभ ही है। दर्शन शास्त्र में हमारे संमुख एकमात्र वही लक्ष्य रहता है। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य सुख नहीं वरन ज्ञान है क्योंकि सुख और आनन्द का तो एक न एक दिन अन्त हो जाता है। अतः यह मान लेना कि सुख ही चरम लक्ष्य है, मनुष्य की भारी भूल है। संसार में सब दुःखों का मूल यही है कि मनुष्य अज्ञान वश यह समझ लेता है कि सुख ही चरम लक्ष्य है। परन्तु कुछ समय के लिए मनुष्य को बोध नहीं होता है कि जिसकी ओर वह जा रहा है वह सुख नहीं वरन ज्ञान है। सुख और दुख दोनों ही महान् शिक्षक हैं और जितनी शिक्षा उसे सुख से मिलती है उतनी दुःख से भी। सुख और दुख ज्यों–ज्यों आत्मा पर से होकर जाते हैं त्यों–त्यों उसके ऊपर अपनी छाप छोड़ते जाते हैं।

मानव जगत् में हो रहे कार्य को करना ही कर्म योग नहीं है। कर्मयोग ही मानव के शरीर, इन्द्रियाँ, धन, सम्पत्ति आदि सारे साधनों और उनसे होने वाले कर्तव्य रूप सारे कर्मों को तथा उनके फलों को भी ईश्वर को समर्पण करते हुए अनासक्त निष्काम भाव से व्यवहार करने को कर्म योग कहते हैं?

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कर्म के बारे में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संङ्ग त्यक्त्वा करोयि तः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा।।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्मशुद्धये।।

युक्त कर्मफलंत्यक्त्वा शान्ति माप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेणं फलेसक्तो निबध्यते।।
(गीता ५/१०, ११, १२)

ईश्वर को समर्पण कर आसक्ति को छोड़कर जो कर्म करता है वह पानी में पद्मपत्र की तरह अभिमान को छोड़कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए केवल शरीर इन्द्रियाँ मन और बुद्धि से काम करता है। वे योगी कर्म के फल को त्यागकर परम प्राप्ति रूप शक्ति का लाभ करते हैं। अयोगी कामनाओं के अधीन होकर फल में आसक्त हुआ बँधता है।

यदि आप किसी मनुष्य की सहायता करना चाहते हैं तो इस बात की कभी चिन्ता न करें इस आदमी का व्यवहार आपके प्रति कैसा है। यदि आप एक श्रेष्ठ एवं भला कार्य करना चाहते हों तो यह सोचने का कष्ट न करें कि उसका फल क्या है।

तपः स्वाध्यायेवर प्रणिधानानि क्रिया योगः।।

अपने वर्ण, आश्रम परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण अनायास शुद्ध हो जाता है। वह गीतोक्त कर्मयोग ही कहलाता है जिससे कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध हो सके। वेद–शास्त्र, महान् पुरुषों के लेख आदि का पठन–पाठन करना भी कर्म योग होता है।

समाधिभावनार्थः केशतनूकरणार्थश्वः।।

साधना से साधक के अविधादि क्लेशों का क्षय होकर उसको कैवल्य अवस्था तक समाधि की प्राप्ति हो सकती है। यह कर्म योग का ही अंग है।

अब कर्म इस आदर्श के सम्बन्ध में एक कठिन प्रश्न उठता है। कर्मयोगी के लिए सतत् कर्म शीलता आवश्यक है। हमें सदैव कर्म करते रहना चाहिए। हम कार्य वगैर एक क्षण भी नहीं रह सकते तो फिर प्रश्न यह है कि आराम के बारे क्या होगा? यहाँ इस जीवन संग्राम के एक ओर कर्म है जिसके भंवर में फसे हम लोग चक्कर काट रहे हैं और दूसरी ओर

है शान्ति। पर इन दोनों में से कोई भी आदर्श का चित्र नहीं है। यदि एक ऐसा मनुष्य जिसे एकान्त वास का अभ्यास है, संसार के चक्कर में घसीट लाया जाय तो उसका उसी प्रकार ध्वंस हो जायेगा जिस प्रकार समुद्र की गहराई में रहने वाली मछली पानी के सतह से बाहर आते ही मर जाती है। इसी तरह एक ऐसा मनुष्य, जो सांसारिक तथा सामाजिक जीवन के कोलाहल से अभ्यस्त रहा है, यदि किसी शान्त स्थान को ले आया जाय तो क्या वह शान्ति पूर्वक रह सकता है? नहीं, उसे क्लेश होता है। आदर्श पुरुष तो वे हैं जो परमशान्ति एवं निस्तब्धता के बीच भी तीव्र कर्म का तथा प्रबल कर्मशीलता के बीच भी मरुस्थल की शान्ति एवं निस्तब्धता का अनुभव करते हैं। उन्होंने संयम का रहस्य जान लिया है। वे अपने ऊपर विजय प्राप्त कर चुके हैं। किसी कोलाहल भरे स्थान पर जाने पर उसका मस्तिष्क उसी तरह शान्त रहेगा जिस तरह वह साधना काल में रहता है यही कर्मयोग का आदर्श है। यदि आपने यह प्राप्त कर लिया है तो वास्तव में आपने कर्म का रहस्य जान लिया है।

कर्मयोगी वही है, जो समझता है कि सर्वोच्च आदर्श 'अप्रतिकार' है। जो मानता है कि यह अप्रतिकार ही मनुष्य की आन्तरिक शक्ति का उच्चतम विकास है, जो यह भी जानता है कि जिसे हम अभ्यास का प्रतिकार कहते हैं वह प्रतिकार रूप उच्चतम शान्ति की प्राप्ति के मार्ग में केवल एक सीढ़ी मात्र है। सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त करने के पहले अन्याय का प्रतिकार करना मनुष्य का कर्तव्य है। पहले वह कार्य करे युद्ध करे, यथाशक्ति प्रतिद्वन्द्विता करे। जब उसमें प्रतिकार की शक्ति आ जायगी, तभी अप्रतिकार उसके लिए गुण स्वरूप होगा।

हम ऐसा कोई भी कर्म नहीं कर सकते जिससे कहीं कुछ लाभ न हो और ऐसा भी कोई कर्म नहीं है, जिससे कहीं न कहीं कुछ हानि न हो। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण–दोष से मिश्रित रहता है। परन्तु शास्त्र हमें सतत् कर्म करने का ही आदेश देते हैं। परन्तु सत् और असत् दोनों ही आत्मा के लिए बन्धन स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में गीता का कथन है कि

यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों तो हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं पड़ सकता। गीता में कर्म का बार–बार उपदेश मिलता है। कर्म स्वभावतः ही सत् असत् से मिश्रित होता है।

कर्म करना हमारा पहला लक्ष्य है। इसी बात पर गीता में भी बार--बार जोर दिया गया है फिर भी कर्म में आसक्त मत होना। जिस तरफ हमारे आपके मन का झुकाव होता है हम वैसा ही कर्म करते हैं। यदि अपने मन को तालाब मान लिया जाय तो उसमें उठने वाली प्रत्येक लहर जब शान्त हो जाती तो सम्भावना का निर्माण कर जाती है। सम्भावना को हम साकार का रूप देते हैं। साकार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट नहीं होता। वह अन्दर ही अन्दर कार्य करने की शक्ति रखता है। हमारा प्रत्येक अंग संचालन, हमारा प्रत्येक विचार, हमारे चित्त पर इसी प्रकार का एक संस्कार छोड़ता है। संस्कार भी दो प्रकार का होता है। अच्छा और बुरा। यदि अच्छे संस्कार का प्रयोग करें तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है। यदि बुरा सोचते हैं तो हमें बुरे कर्मों की ओर ले जाता है। वास्तव में संस्कार अपना निरन्तर कार्य करते हैं। बुरा कार्य आगे चलकर अभ्यास का रूप ग्रहण कर लेता है तो उस व्यक्ति का संस्कार भी बुरा होगा, और अच्छे संस्कारों वाले व्यक्ति के ऊपर इन सभी बातों का असर नहीं होता। जब मनुष्य अच्छे संस्कारों की प्रवृत्ति रखता है तो उसमें सत्कार्य करने का भाव अपने आप उत्पन्न हो जाता है। अच्छा संस्कार सदैव बुरे कर्मों को रोकने की चेष्टा करता है जिस तरह कछुआ अपने सब अंगों को समेट कर जबड़े के अन्दर ले बैठता है तो उसके बाद उस पर आप चाहे कोई भी हरकत करें उसे मारें–फोड़ें परन्तु वह बाहर नहीं निकलता, ठीक उसी प्रकार मनुष्य जब अपनी सब इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, तो उसका चित्त सदैव स्थिर रहता है। वह अपनी आभ्यान्तरिक शक्तियों को वश में रखता है और संसार की कोई भी वस्तु उसके मन पर कार्य नहीं कर सकती।

भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "हे अर्जुन यदि मैं कर्म करने से एक क्षण के लिए भी रुक जाउं तो सारा विश्व ही नष्ट हो जाय। कर्म

से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं। मैं जगत् का एक मात्र प्रभु हूँ फिर भी मैं क्यों करता हूँ?—इस लिए कि मुझे संसार से प्रेम है।" ईश्वर अनासक्त है। क्यों? इसलिए कि वे सच्चे प्रेमी हैं। उस सच्चे प्रेम से ही अनासक्त हो सकते हैं। जहाँ कहीं अनाशक्ति है वहाँ जान लेना चाहिए कि वह केवल भौतिक आकर्षण है। जहाँ सच्चा प्रेम है वहाँ भौतिक आकर्षण बिल्कुल नहीं रहता। ऐसे प्रेमी चाहे वह सहस्त्रों योजन दूर क्यों न रहें उनका प्रेम सदैव वैसा ही रहता है। वह प्रेम कभी नष्ट नहीं होता, उससे कभी कष्ट नहीं होता।

कर्म के साथ–साथ त्याग होना जरूरी है। अगर आप में त्याग नहीं है तो कर्म अधूरा माना जाता है। त्याग कर्म का प्रमुख अंग है। कोई बड़ा तप, जप सब बेकार है अगर त्याग भावना नहीं है। प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है और कर्त्तव्य निष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। वृद्ध जीवों की भाँति अज्ञान तिमिराच्छन्न आत्माओं को ज्ञान और मुक्ति दिलाने में यह कर्त्तव्य निष्ठा निश्चय ही सहायक है।

उपासना योग

एक ही पर टिके रहना अर्थात् चित्त की वृत्तियों को सब ओर से हटाकर एक ही स्थान पर ठहराने को उपासना कहते हैं। उपासना योग नहीं है। उपासना योग तभी कहलायेगा जब मुख्य लक्ष्य शुद्ध परमात्मा की प्राप्ति हो। इसको ही ढंग से यों समझना चाहिए कि जिस तरह मिट्टी के अन्दर सर्वत्र जल व्याप्त है किन्तु उसको खोदकर प्राप्त करने के लिए किसी स्थान विशेष पर ही खोदकर प्राप्त किया जा सकता है, ठीक उसी तरह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु उसको शुद्ध स्थान पर होकर ही प्राप्त किया जा सकता है। यह जो चित्त को किसी विशेष स्थान पर टिकाकर शुद्ध परमात्मा को प्राप्त करने का यत्न किया जाता है वही उपासना योग है।

हम आप सभी जानते हैं कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। जरा आँखें बन्द करें और सोचें तो वह क्या है। यही कि मन में सर्व व्यापकता का भाव लाने के लिए हमें या तो संसार की कल्पना करनी पड़ती है पर नील गगन विस्तृव मैदान अथवा किसी वस्तु की, जिसे आपने अपने जीवन में देखा है यदि उतना है तो ईश्वर सर्व व्यापकता का कुछ भी अर्थ नहीं समझते। वह आपके लिए बिल्कुल अर्थ हीन है, ऐसा ही ईश्वर की अंन्य उपाधियों के सम्बन्ध में जानें। आप भगवान् के उपासक तभी बन पायेगें जब उनके स्वरूप का अनुभव कर सकें। जब तक यह अनुभूति नहीं होती तब तक ईश्वर कुछ अच्छरों से बना शब्द मात्र है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, ज़ब आप जान लोगे स्वयं क्या हो? आपने क्या अनुभव किया? तब ही उपासना में सच्चे साधक हो सकते हैं।

उपासक को ही समाधि तथा सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। इसके लिए किसी एकान्त शुद्ध स्थान में सिर गर्दन और कमर को सीधा एक रेखा में रखते हुए किसी स्थिर सुख आसन में बैठकर प्राणों की गति को धीमा करना और इन्द्रियों को बाहर के विषय से हटाकर चित्त के साथ अन्तर्मुख करना आवश्यक है। फिर यह देखना आवश्यक है कि अन्तर्मुख होने के लिए किस

स्थान को लक्ष्य बनाया जाय। वैसे तो परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु उनके शुद्ध स्वरूप तक पहुँचने के लिए अपने ही शरीर में किसी स्थान को लक्ष्य बनाने में सुगमता रहती है।

जब हम अन्तर्मुख होने की चेष्टा करते हैं तब ही सगुण ब्रह्म के रूप मे देख सकते है ! तात्पर्य यह है कि आत्मा का विषयीकरण नहीं हो सकता। आत्मा कोई दृश्यमान वस्तु नहीं बताई जा सकती। ज्ञाता स्वयं अपना ज्ञेय कैसे हो सकता है? परन्तु उसका मानो प्रति बिम्ब पड़ सकता है। चाहे तो उसे उसका विषयीकरण कह सकते हैं। आत्मा सनातन ज्ञाता है, और हम उसे ज्ञेय रूप में ढालने का निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं। इसी संघर्ष से इस जगत प्रपंच की सृष्टि हुई है। इसी यत्न से जड़ पदार्थ आदि की उत्पत्ति हुई है। पर ये सब आत्मा के रूप हैं। आत्मा हमारे लिए सम्भव सर्वोच्च ज्ञेय रूप है जिसे हम 'ईश्वर' कहते हैं।

ब्रह्म को जानने का यह प्रयास हमारे लिए स्वयं अपने स्वरूप के प्रकटीकरण का प्रयास है। सांख्य के मतानुसार प्रकृति यह सब खेल पुरुष को दिखा रही है। जब पुरुष को यथार्थ अनुभव हो जायेगा तब अपना स्वरूप जान लेगा।

सुषुम्ना नाड़ी नाड़ियों में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है, सुषुम्ना नाड़ी में विद्यमान मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणि पूरक, अनाहत विशुद्ध, आज्ञा और सहस्त्रार चक्र हैं। यह सत्त्व प्रधान प्रकाश मय और अद्भुत शक्ति वाली है। यही सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म प्राणों तथा अन्य सब शक्तियों का स्थान है। इसमें बहुत सी सूक्ष्म शक्तियाँ केन्द्रित हैं, जिनमें अन्य सूक्ष्म नाड़ियाँ मिलती हैं। इनमें सात मुख्य हैं जैसे—मणिपूरक, अनाहत, आज्ञा और सहस्नार महत्वपूर्ण हैं। इसके लिए ध्यान के वास्ते कौन सा स्थान अधिक उपयोगी हो सकता है इसके लिए साधक स्वयं अनुभव कर यथास्थान ध्यान लगा सकते हैं।

सांख्य योग

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योग समं बलम्।।

साख्यं के समान और कोई दूसरा ज्ञान नहीं है और योग के समान कोई दूसरा वल नहीं है।

गीता में सांख्य का ज्ञानयोग तथा संन्यास योग के नाम से भी वर्णन किया गया है। सांख्य नाम रखने का यह भी कारण हो सकता है कि इसमें गिने हुये पच्चीस तत्त्व माने गये हैं।

सांख्य नामकरण का रहस्य इसके एक विशिष्ट सिद्धान्त 'प्रकृति रूषान्य व्याख्याति' में छिपा हुआ है क्योंकि 'प्रकृति पुरुषान्यव्याख्याति' या 'प्रकृतिपुरुष विवेक' का ही दूसरा नाम 'सांख्य–सम्यक्ख्याति–सम्यक् ज्ञान–विवेक ज्ञान' है। किसी वस्तु के विषय में तद्गत दोषों तथा गुणों की छानबीन करना भी 'सांख्य' कहलाता है।

यथा–

दोषाणां च गुणानां च प्रमाणं प्रविभागतः।
कच्चिदर्थमभिप्रेत्य सा सांख्येपूदधार्यताम्।।

(महाभारत)

यथा–

शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।

(शंकर विष्णु सहस्त्र नाम भाष्य)

साख्यं के प्रर्वतक श्री कपिल मुनि हैं और योग दर्शन के निर्माता श्री पतंजलि मुनि। कपिल मुनि आदि विद्वान इसके प्रथम दर्शनकार हैं।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्चते।
हिरण्यंगर्भो योगस्य वक्तानान्य पुरातनः।

(महाभारत)

साख्यं के प्रथम वक्ता कपिल मुनि हैं। योग के वक्ता हिरण्य गर्भ

हैं। इनसे पुरातन वक्ता अन्य कोई और नहीं है। यद्यपि ये दोनों दर्शन अलग--अलग नाम से वर्णित हैं यथार्थतया देखा जाय तो ये दोनों एक ही हैं।

चित्त को नष्ट करने के लिए केवल दो निष्ठायें बतलायी गयी हैं– योग और सांख्य। योग चित्त वृत्ति निरोध से प्राप्त किया जा सकता है और सांख्य सम्यग् ज्ञान से। किसी को योग कठिन होता है किसी को सांख्य। इसी कारण परम शिव ने योग और सांख्य दोनों को ही बतलाया है। सांख्य और योग दोनों आरम्भ में एक ही स्थान से चलते हैं और अन्त में एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। योग बीच में थोड़ी सी घूमने वाली पक्की सड़क से चलता है। सांख्य और योग में बहिर्मुख होकर संसार चक्र में घूमने के कारण अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश क्लेश तथा सकाम कर्म बतलाये गये हैं। इसी को क्रमबद्ध कर अष्टांङ योग द्वारा अन्तर्मुख होने की क्रिया बतलाई गई है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँच बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान, समाधि अन्तरंग साधन है। किन्तु जहाँ योग में धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा किसी विषय को श्रेय बनाकर अन्तर्मुखी होते हैं वहीं सांख्य में निरालम्ब बिना किसी विषय को ध्येय बनाकर अन्तर्मुख होते हैं, और अन्तर्मुख होने के लिए ओइम की मात्राओं द्वारा उसके अर्थों की भावना करते हुए वाणी से जाप करना एक मात्रा वाले आकार ओम की उपासना है। इससे शरीर का आभास रहता है जब मानसिक जाप सूक्ष्म होकर केवल ओम् की ध्वनि रह जाय वह उपासक होता है। परमात्मा किसका ईश्वर है। वह उपास्य होता है। जब यह तीन मात्रा वाली ध्यान रूप वृत्ति भी सूक्ष्म होते--होते निरुद्ध हो जाय तो मात्र विराम रह जाता है यह कारण शरीर और कारण जगत् दोनों से परे शुद्ध परमात्मा ही रह जाता है जो कि प्राणिमात्र का अन्तिम ध्येय है।

योग का, भक्ति का लम्बा मार्ग सुगम है पर सांख्य ज्ञान का छोटा मार्ग उससे कठिन है।

योग और सांख्य ने बुद्धि अर्थात् चित्त को पृथक् तत्त्व माना है किन्तु न्याय और वैशेषिक ने इसको आत्मा में ही सम्मिलित करके आत्मा के शबल स्वरूप के धर्म, ज्ञान, प्रत्यय आदि बतलाये हैं। इसलिए जहाँ सांख्य और योग को ज्ञान अथवा चेतन स्वरूप माना है वहाँ न्याय और वैशेषिक ने ज्ञान और प्रयत्न आदि धर्म वाला माना है, क्योंकि इसके लक्षणानुसार द्रव्य या तो समवायी कारण हो या क्रिया वाला।

सांख्य तथा योग दोनों दर्शन भी शरीर इन्द्रियाँ तथा मन से पृथक चेतन तत्त्व मानते हैं।

सांख्य योगी पृथग्वाला: प्रवदन्ति न पण्डिता:।
एकमप्यास्थित: सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।
तत्सांख्यै: प्राप्यते स्थानं तद्योगेरपि गम्यते।
एकं सांख्य च योगं च य: पश्यति स पश्यति।।

(गीता ५—४—५)

सांख्य और योग को पृथक्—पृथक् अविवेकी लोग ही जानते हैं, न कि पण्डित लोग। इन दोनों में से एक का भी ठीक अनुष्ठान कर लेने पर दोनों का फल मिलता है। सांख्य योगी जिस शुद्ध परमात्मा स्वरूप का लाभ करते हैं योगी भी उसी को पाते हैं। जो सांख्य योग को एक जानता है वही तत्त्ववेत्ता है। किन्तु इन दोनों में सांख्य कठिन है।

भक्ति योग

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परतप।।

(श्रीमद्भगवद्गीता) ११—५४

अन्य योग की भाँति भक्ति योग अत्यन्त सरल एवं सहज है। यह मानव की प्रकृति पर निर्भर रहता है, भावुक तथा रागात्मक प्रकृति के व्यक्तियों पर यह मार्ग सर्वाधिक उपर्युक्त है, इसलिए भक्ति—मार्ग को प्रेम मार्ग भी कहा जाता है। जब तक जीव के भीतर अहंकार रहता है वह भक्त नहीं हो सकता। ज्ञानी में अहंकार हो सकता है। भक्त की दृष्टि में ज्ञानी वास्तव में अज्ञानी है।

भक्ति वह सहज भाव है जो जीव के हृदय में परमात्मा के प्रति उत्पन्न होता है ! इसमें ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कामना नहीं की जाती, भक्त सिर्फ ईश्वर को चाहता है। भक्त के पाँच लक्षण हैं, (१) ईश्वर के लिए कर्म करने वाला (२) ईश्वर को आश्रय मानने वाला (३) ईश्वर की भक्ति करने वाला, (४) शंका रहित भक्ति करने वाला (५) बैर भाव से रहित।

सच्चा भाव वही है जो निष्काम भाव से भगवान् को भक्ति के लिए कार्य करता है। भक्त के हृदय में केवल भगवान् निवास करते हैं। वास्तविक भक्ति में भक्त सर्वथा भगवानमय हो जाता है। ईश्वर के अस्तित्त्व का बोध और उनके प्रति प्रीति ही भक्त की भक्ति भूमिका रह जाती है। भक्त सम्राज्ञी है और मुक्ति उसकी दासी। सच्ची भक्ति में कृतज्ञता आदि भावों के लिए कोई स्थान नहीं है कृतज्ञता प्रायः आकांक्षित वस्तु के प्राप्त होने पर व्यक्त की जाती है किन्तु वास्तविक भक्ति में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की कामना नहीं होती बालक ध्रुव और प्रह्लाद के उदाहरणों में निष्काम भक्ति का भाव देखा जाता है। भक्ति रसामृत—सिन्धु के अनुसार कामना के विषय के प्रति हृदय का सहज प्रेम ही राग है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत:।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनतरम्।।
(गीता) १८—५५

भगवान् कहते हैं कि मेरी प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति तीन ही मार्ग हैं। चौथा और कोई मार्ग नहीं है। तीनों एक साथ ही रहते हैं। जहाँ ज्ञान होगा वहीं योग होगा, जहाँ ज्ञान और योग है वहीं भक्ति है। ज्ञान का अर्थ है जानना, योग का अर्थ है चित्त की वृत्तियों का निरोध करके मुझसे मिलना। इसलिए ज्ञान से मुझसे जानकर योग से मिलकर, तुम्हारी मुझमें जो अवस्था होगी वही मेरी पराभक्ति है।

भक्ति कई प्रकार की होती है। प्रथम को वौधी, हैतुकी अथवा गौणी तथा दूसरी को रागात्मिका, अहैतुकी, मुख्या अथवा परा कहा जाता है। हैतुकी भक्ति निम्न स्तर की होती है, प्रयोजन पर आधारित होने से इसे हैतुकी कहा जाता है। इसमें ईश्वर के लिए भक्ति नहीं होती बल्कि सांसारिक विषयों के लिए भक्ति की जाती है। इसमें भी ईश्वर के प्रति मानव की भक्ति स्वार्थ हित के लिए तीन प्रकार की होती है। सात्विकी भक्ति में सांसारिक विषयों की अपेक्षा स्वर्ग तथा दैवी आनन्द की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति की जाती है। राजस भक्ति में सांसारिक समृद्धि अथवा शत्रु पर विजय की कामना की जाती है। तामसीभक्ति—इसमें तामसी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ईश्वर की आराधना की जाती है। चोर और डाकू प्रायः अपने कार्यो की सिद्धि के लिए काली आदि की उपासना करते हैं।

हैतुकी भक्ति का तीन रूप है (१) आर्तभक्त वह है जो आपत्ति से छूटने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है। (२) जिज्ञासुभक्त—जिसे ईश्वर के प्रति अनुराग नहीं है, बल्कि जो ईश्वर के सत्य स्वरूप को प्राप्त करने के लिए उपासना करता है, (३) अर्थाथी भक्ति—जो ईश्वर से किसी निश्चित वर को प्राप्त करने की कामना करता हो।

वास्तव मे शैशव काल भक्ति के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ काल है। वैसे भक्ति कि लिए विशेष आयु, जाति, लिंग आदि आवश्यक नहीं है। किसी

भी आयु में भक्ति की जा सकती है। भक्ति के लिए धन–सम्पत्ति भी आवश्यक नहीं है। भक्तों में अमीर–गरीब का भेद नहीं होता, बल्कि निर्धन और असहाय मनुष्य सहज रूप से भक्ति अपना सकता है। धर्म में दीन और अनाथों के नाथ को ही ईश्वर कहा जाता है। निर्धन व्यक्ति ईश्वर का विशेष पात्र माना गया है। ईसा के अनुसार एक ऊँट सुई के छिद्र से सरलता पूर्वक निकल सकता है किन्तु धनवान् व्यक्ति का ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश पाना कठिन है। धन या सम्पत्ति बुराइयों का श्रोत है। दुर्योधन का राजसी स्वागत त्यागकर कृष्ण विदुर का सादा भोजन ग्रहण करते हैं। भक्ति के लिए कर्मकाण्ड, मिथ्या आडम्बर पाण्डित्य आदि भी आवश्यक नहीं। प्रेम अथवा भक्ति के बिना समस्त पाण्डित्य अधूरा है।

सामान्यतः भक्ति मार्ग के नव साधन माने गये हैं। इन्हें नवधा भक्ति कहा गया है। ये नौ साधन–अर्चना, वन्दना, दासता, सेवन, स्मरण, कीर्तन, श्रवण, सख्यभाव तथा आत्म निवेदन। इसके अलावा भक्ति के निम्न ६ रूप और हैं। (१) सद्भाव– इसमें भक्त सन्तो के समान ईश्वर में बौद्धिक प्रेम करता है। (२) दास्यभाव– इसमें भक्त ईश्वर के प्रति सेवक जैसा भाव रखता है। (३) सख्यभाव– इसमें भक्त जीव और ईश्वर को सखाके रूप में स्वीकार करता है। (४) वात्सल्यभाव– इसमें पुत्र जैसा व्यवहार होता है जैसे यशोदा तथा दशरथ, (५) मातृभाव– मातृ भाव में भक्त ईश्वर को माता–पिता के रूप में देखता है और इसी भाव से ईश्वर की पूजा करता है।(६) माधुर्यभाव– इसमें भक्त में मधुर भाव की प्रधानता रहती है। इसमें जीव ईश्वर के प्रति प्रियतमं का दृष्टिकोण रखता है।

हठयोग

हठयोग एक प्रकार का अष्टांग योग का ही रूप है। इसमें योग के प्रथम चार अंगों को प्रधानता दी जाती है। हठयोग प्रदीपिका, गोरखसंहिता आदि ग्रन्थों में हठयोग राजयोग की नींव कहा जाता है।

'ह' का अर्थ है सूर्य–पिङ्गला दाहिनी ओर की वायु और 'ठ' का अर्थ है चन्द्र–इडा बायीं ओर की वायु। वायु को अन्दर खीचना 'ह' है और बाहर छोड़ना 'ठ' है। हठयोग के बिना प्राणायाम सिद्ध नहीं हो सकता। राजयोग के लिए हठविधा आवश्यक है, आदिनाथ भगवान् शिव हठयोग के जन्मदाता माने गये हैं। नाथ तथा सिद्ध संप्रदायों में विशेषरूप से हठयोग का प्रचलन रहा है। योग साधना में सर्वप्रथम शरीर–विचार आता है। इसमें शरीर को ईश्वर का मन्दिर माना जाता है। अतः उसका सदुपयोग होना चाहिए। जो व्यक्ति शरीर को केवल सुख देते हैं तथा जो उसे कष्ट देते हैं वे दोनों ही शरीर का उचित उपयोग नहीं करते। इसी कारण यह आत्मा का गढ़ शत्रु काल के हाथ में पड़ गया है। काया–गढ़ को शत्रु से छुड़ाकर उसके स्वामी को सौंपना आवश्यक है। काल के प्रभाव से शरीर तभी मुक्त माना जा सकता है जब वह जरा, मरण आदि विकारों से मुक्त होकर सदा बाल स्वरूप रहे। रस सिद्धि यम, नियम, आसन आदि मात्रा में ही उपयोगी है। चौरासी लाख आसनों में दो आसन प्रधान है पद्मासन तथा सिद्धासन। शरीर में नौ नाड़ी, बहत्तरकोटि, चौसठसंधि, षठचक्र, षोडशाधार, दस वायु, कुण्डलिनी आदि हैं। सहास्त्रर में स्थित गगन मण्डल (ब्रह्मस्थ) में अधोमुख का अमृत कूप है। यही चन्द्र तत्त्व है जिसमें निरन्तर अमृत झरता है। जो इसका पान करता है वह अमर हो जाता है। इसके लिए योगी को उर्ध्व होना आवश्यक है। अमृत पान के लिए विपरीत करणों मुद्रा जालन्धर बन्ध तालुमूल में जिह्वा को ले जाना, कुण्डलिनी जागरण आदि कई विधियों का निर्देश है। प्राणायाम तथा वायु के यातायात के नौद्वारों को बन्द रखना आवश्यक है। इस प्रकार जब शरीर में प्राण व्याप्त हो जाता है तो बिन्दु स्थिर

होकर अमृत का रसास्वादन, अनादृतनाद का श्रवण तथा आत्मा का साक्षात्कार होता है।

मार्कण्डेय अष्टांग योग को हठयोग मानते हैं परन्तु गोरखनाथ के मत में हठययोग के छः अंग ही है। कुछ आचार्यो ने हठयोग का वर्णन राजयोग के सोपान के रूप में किया है। उनके अनुसार हठयोग राजयोग सिद्ध होता है। हठयोग प्रदीपिका के मत में समाधि, उन्मानो, मनोन्मनी अमरत्व, लय, तत्व परमपद, अमृनस्क, निरालम्ब, निरंजन, सहज आदि राजयोग के नामान्तर हैं। कई हठयोगियों के अनुसार हठयोग से स्वभावतः राजयोग का विकास होता है। कुम्भक द्वारा प्राण की गति रुद्ध होने पर चित्त निरालम्ब होता है।

हमारे योग मार्ग में योग सिद्धि हेतु केवल शरीर ही नहीं, अपितु मन पर विजय भी आवश्यक है। मन एक चेतन इन्द्रिय है। मन के चंचल होने पर शरीर तथा इन्द्रियाँ भी चंचल होने लगती हैं। 'मन को बस' में करने के लिये करनी और रहनी आवश्यक है। करनी का तात्पर्य है क्रिया। क्रियायोग तथा हठयोग का पूर्ण विकास नाथमार्ग से हुआ है। प्रायः सभी योग साधनाओं में हठयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'रहनी' का अर्थ भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं का सम्यक् संयोग है। मनको बस में रखना रहनी की मुख्य आवश्यकता है। असंयमित मन जीव को चौरासी फंदे में डाल सकता है संयमित मन उसे मोक्ष दिला सकता है। योग में देह शुद्धि को घट शुद्धि कहा जाता है। घट शुद्धि ही हठयोग का उद्देश्य है। धरेण्ड संहिता के मतानुसार षट्कर्म के द्वारा देह को शुद्धि हो जाती है। आसन और मुद्रा के अभ्यास से देह में दृढ़ता और स्थिरता आती है।

'आसनेन रजोहन्ति'

इस सिद्धान्त के अनुसार आसन के निरन्तर अभ्यास से रजोगुण का नाश हो जाता है तथा रजागुण से उत्पन्न शारीरिक चंचलता और मानसिक अस्थिरता भी समाप्त हो जाती है। रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। देह का भारीपन दूर होता हे, और सात्विक तेज की वृद्धि होती है। आसन के स्थिर

होने पर प्राणायाम की क्रिया सहज साध्य हो जाती है किन्तु नाड़ी चक्र के आच्छान्न होने के कारण वायु सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश नहीं कर पाती। अतः नाड़ीशोधन आवश्यक है। उचित प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना के अन्दर का समस्त मल नष्ट हो जाता है। जब नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं तो देह की कृशता, कान्ति, अग्नि, बुद्धि, नादकी अभिव्यक्ति आरोग्यता आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। नाड़ियो को शुद्ध होने पर शरीर के समस्त दोष नष्ट होते और उसमें साम्य, सुगधि और कांति प्रस्फुरित होती है तथा स्वर में माधुर्य आता है। घट–शुद्धि के समान स्थूलता का नाश आदि भी हठयोग का अव्यवछित फल है। मुद्रा साधन के द्वारा ब्रह्म द्वार या सुषुम्ना–मुख से कुण्डलिनी जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है, जिससे चक्र और ग्रन्थि का भेदन होता है तथा प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है। प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के द्वारा क्रमशः दैहिक धीरता, लघुता, आत्म–प्रत्यक्ष तथा निर्लेपता सम्पन्न होती है।

इदानीं हठ योगस्तु कथ्यते हठ सिद्धिदः।
कृत्वासनं पवनाश शरीरे रोग हारकम्।।

पूरकं कुम्भकश्चैव रेचक वापु ना भजत्।
इत्थं क्रमोत्क्रमं ज्ञात्वा पवनं साधयेसदो
धौत्यादि कर्मषट वच्यं सस्कुर्यात् हठ साधकः।।

हाकरेण तु सूर्यः स्यात्सकारेणेन्दु रुच्यते।
सूर्य चन्द्र मसो रैक्यं हठ इत्यभिधीयते।
हठेनग्रस्यतेऽ्यं सर्वदोष समुभ्दवम्।।

(प्रणतोषणीतत्र तथा योगशिखोपनिषद)

साधक को सिद्धि देने वाले को हठयोग कहते हैं, कि शरीर के रोग को नाश करने वाले आसनों को करके पूरक कुम्भक और रेचक प्राणायाम करें। इस प्रकार क्रम से नाना प्रकार के आसन बन्ध मुद्रा नाना प्रकार के

प्राणायाम तथा नाड़ी शुद्धि की क्रियायें नेति, धौति, वस्ति आदि षट्कर्म हठयोग में किये जाते हैं। हठयोग का प्रधान अंग प्राणायम है, हकार नाम सूर्य नाड़ी प्राण का है और सकार नाम चन्द्रनाड़ी तथा अपान का है। प्राण अपान की एकता तथा प्राणायाम भी हठयोग कहलाता है। यह प्राणायाम की सिद्धि के लिए हठयोग में आसन, बन्ध, मुद्रा तथा नाड़ी शुद्धि क्रियायें षट्कर्म में की जाती हैं, हठयोग से शरीर की जड़ता का नाश होता है और सब रोग नष्ट होते हैं तथा प्राण का जप होने से राजयोग की प्राप्ति होती है।

राजयोग

इदानीं कथयिस्यामि राजयोगस्य लक्षणम्।
राजयोगे कृते पुम्भिः सिद्धि विह्वं भवेदिति।। १ ।।

परिपूर्ण भवेच्चित जगत्स्योऽपि जगद् वहिः।
न क्षोभं जन्ममृत्युश्च न सुखं न दुखतथा।। २ ।।

अणिमादि पदं प्राप्य राजते राजयोगतः।
प्राणापान समायोगो ज्ञेयं योग चतुष्टयम्।। ३ ।।
(स्वरोदय तथा शिखोपनिषद)

राजयोग की प्राप्ति होने से पुरुष सिद्धि सम्पन्न हो जाता है और उसका चित्त परिपूर्ण हो जाता है। बाहर और अन्दर ज्ञान से परिपूर्ण पुरुष कभी भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। न उसका जन्म होता है न मृत्यु होती है, और न उसको जगत् के सुख–दुःख होते हैं। वह तो सर्वदा अपने आत्म स्वरूप में निमग्न रहता है। उसको भोग के यावत ऐश्वर्य अणिमादिक सिद्धियों को प्राप्ति हो जाती है। फलस्वरूप वह कृतार्थ हो जीवन मुक्त होकर रहता है। इस प्रकार योग के विषय में जो कुछ कहा गया वह चारों योग में प्राण अपान की एकता से ही चारों योग सिद्ध होते हैं, इसलिए हरेक योग में प्राण का जप करना आवश्यक है।

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग का प्रमुख लक्षण है। योग की संप्रज्ञात तथा असप्रज्ञात दोनों अवस्थाओं में चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। इस अवस्था में आत्मा अथवा द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थिर होता है और निर्लेप तथा चैतन्य स्वरूप को प्राप्त करता है। यद्यपि सुषुप्ति में भी वृत्तियों का निरोध होता है, तथापि उसे योग नहीं कहा जा सकता। एक तो वृत्तियों का निरोध आत्यन्तिक अथवा पूर्ण होना चाहिए। दूसरे द्रष्टा को अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होना चाहिए। (तदा दृष्टः स्वरूपेऽवस्थानम्)

तीसरे वृत्ति निरोध ज्ञानमूलक होना चाहिए। उसी वृत्ति निरोध को योग कहा जा सकता है जो प्रज्ञा के उदय होने पर होता है, किन्तु सुषुप्ति में ये तीनों विशेषतायें नहीं पायी जातीं। जहाँ मन के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ संयम द्वारा स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी निश्चेष्ट हो जाती है उस दशा का नाम योग है, वही परम गति है।

हमारे मानव शरीर में मन बुद्धि तथा अहंकार इन तीनों को चित्त कहा जाता है। चित्त अन्तःकरण का द्योतक है। चित्त में सदैव सात्विक राजसिक अथवा तामसिक भाव उठते रहते हैं। इन तीन गुणों के आधार पर चित्त भी तीन प्रकार का माना जाता है।

१. प्रख्याशील– यह चित्त सात्विक होता है। इसमें ज्ञान प्रधान होता है तथा इसमें प्रसन्नता, उत्साह, अभिरुचि, दया, क्षमा आदि सात्विक गुण अभिव्यक्त होते हैं।

२. प्रवृत्तिशील– इस चित्त में रजोगुण की प्रधानता होती है। कर्मो के प्रति उत्सुकता रहती है तथा परिताप शोक, लाभ ईर्ष्या, आदि गुण प्रकट होते हैं।

३. स्थितिशील– यह चित्त तामसिक होता है। इसमें गरिमा, आवरण, आलस्य, निद्रा आदि तामसिक गुणों को व्यक्त करता है।

इसके अलावा योग शारत्र में चित्त की पाँच भूमिओं का वर्णन किया गया है।

१. क्षिप्तभूमि– इसमें सात्विक गुणों की न्यूनता और राज तथा तामसिक गुणों की समानता होती है। यहाँ रूप रस गन्ध आदि विषयों तथा भोगों व ऐश्वर्यो में चित्त इसी भूमि में रहता है।

२. मूढ़भूमि– इसमें तामसिक गुण प्रधान होता है यह मोहावस्था की भूमि है। इसमें चित्त अधर्म, अवैराग्य अनैश्वर्य तथा अज्ञान जैसी तामसी प्रवृत्तियों में रत रहता है। पिशाच आदि का चित्त इसी भूमि में रहता है।

३. विक्षिप्तभूमि– यह चित्त तमोगुण का तिरस्कार कर देता है। सत्व प्रधान होते हुए भी रजोगुण से संम्बन्ध होने के कारण वह धर्म, ज्ञान,

वैराग्य और ऐश्वर्य को प्रिय समझने लगता है और प्रकृति बुद्धि आदि शूक्ष्म तत्वों के विवेचन में निपुण होता है। चित्तभूमि में चित्त सर्वदा चंचल होने से कभी समाहित नहीं होता। किन्तु विक्षिप्त दशा में सत्व के आधिपत्य के कारण वह कभी समाहित हो जाता है।

४. एकाग्रभूमि– इसमें चित्त पूर्णतः एक ध्येय की ओर लगा रहता है चित्त में एकमात्र सात्विक गुण ही शेष रहता है। उसी को संप्रज्ञात समाधि अथवा विवेक ख्यात भी कहते हैं।

५. निरोधभूमि– इसमें समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। एकाग्र भूमि में चित्त में एकाग्र वृत्ति अथवा एक ही ध्येय की वृत्ति रहती है। किन्तु निरोध भूमि में यह वृत्ति भी विलीन हो जाती है। निरोध भूमि को ही निर्वीज समाधि कहा गया है। अन्तिम दोनों भूमियों में ही अपेक्षित चित्त वृत्ति का निरोध होता है। अतः इन्हीं को योग की अवस्था माना जा सकता है। इनमें क्लेश और कर्म का नाश होता है। क्लेशकर्मादि का निवारक चित्त वृत्ति निरोध ही योग है।

शरीर और मन की शुद्धि के बिना वास्तविक योग संभव नहीं। इस शुद्धि के लिए योग में आठ प्रकार के साधनों का निर्देश किया गया है। अष्टांग योग में प्रथम चार अंग यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम हठयोग के अन्तर्गत आते हैं। शेष चार अंग प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि राजयोग कहलाते हैं। किन्तु दोनों परस्पर पूरक हैं। हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग सम्भव नहीं है। मन्त्रयोग और लययोग भी इन्हीं के अन्तर्गत आते है। इसके दूसरे वर्गीकरण के अनुसार प्रथम पाँच अंगों को वहिरंग योग तथा शेष तीन अंगों को अंतरंग योग कहा जाता है। अष्टांग योग के द्वारा शरीर, मन और बुद्धि शुद्धि होती है, और अन्त में अविद्या का नाश होता है। अविद्या के नाश से अन्तःकरण पवित्र होने से आत्म–ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रत्याहार राजयोग का प्रथम अंग है। प्रत्याहार से इन्द्रियों पर नियन्त्रण मन की निर्मलता तथा शुद्धि आरोग्यता तथा चित्त की योग्यता में वृद्धि होती है।

स्वर योग

स्वर ही ईश्वर है। अर्थात् जिस प्रकार ईश्वर सर्वव्यापी है उसी प्रकार स्वर भी सर्वव्यापी है। जब तक स्वर संयत् रूप से चलता रहता है, तभी तक प्राणी स्वस्थ एवं प्रसन्न दिखाई पड़ता है। यदि स्वर में थोड़ा सा व्यवधान उपस्थित हो जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहती। अतः हमें स्वर को स्वयं समझने का प्रयास करना चाहिए। जिस व्यक्ति ने अपने स्वर को समझ लिया है और स्वर की महत्ता जान ली है, उसका जीवन सार्थक है। क्योंकि इस ज्ञान से उसे भौतिक सुख की पूर्ण प्राप्ति के साथ ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का अनिर्वचनीय आनन्द भी प्राप्त होता है और साधना की पूर्णता उसे जन्म मरण के बन्धन से सर्वदा के लिए मुक्ति दिला देती है।

हमारे पुराणों एवं प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में दीर्घजीवी ऋषियों, तपस्वियों की कहानियाँ मिलती हैं जिनमें उनकी आयु हजारों वर्ष बताई गई है। इतना ही नहीं बल्कि उनकी तपश्चर्या का काल हजारों वर्ष में मिलता है। आज के आधुनिक परिवेश में पला व्यक्ति इन बातों पर आश्यर्च चकित ही नही बल्कि सहसा विश्वास करने को तैयार नहीं है। इसके मूल में क्या रहस्य है इसको जानने का प्रयास नहीं करता। वास्तव में हमारा यह स्वभाव होता है कि जो कुछ नहीं कर पाते उसे असम्भव सा मान बैठते हैं, यही कारण है कि हजार–हजार वर्ष तक तपस्या करके अथवा योगाभ्यास के माध्यम से आश्चर्यजनक प्रयोग की बातों पर आज कोई विश्वास नहीं करता। किन्तु तथ्यतः हमारे ग्रन्थों की पुरानी बातें अपने समय में सत्य रही हैं। उदाहरण स्वरूप हमारे ग्रन्थों में भगीरथ की तपस्या का वर्णन आया है–गोकर्ण नामक तीर्थ में जाकर हजारों वर्षो तक अपने दोनों हाथ उठाकर कठोर तपस्या की और महीने में केवल एक बार फल का आहार किया, सर्वथा सत्य है।

स्वर हमारे शरीर में संचित ईधन के समान है। हमारे प्राचीन

ऋषियों की शुद्ध एवं वैज्ञानिक बुद्धि ने ही सर्वप्रथम स्वर विज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन किया तथा इसका जीवन में प्रयोग कर अपनी आयु को अपने अधीन कर लिया था। यदि आयु का विश्लेषण किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आयु का निर्धारण अन्य माध्यम से नहीं बल्कि स्वर से किया जाता है। उदाहरण स्वरूप हम देखते हैं कि जिसका स्वर जितना ही तीव्र गति से चलेगा, उसकी आयु उतनी ही कम होगी, खरगोश का स्वर अत्यधिक तीव्रता से चलता है अतः उसकी आयु मात्र पाँच वर्ष की होती है। खरगोश को यदि आप ध्यान से देखें तो स्वास क्रिया की तीव्रता के प्रभाव से उसके शरीर में एक कम्पन सा होता रहता है। थोड़ा दौड़ने के बाद यह गति और तीव्र हो जाती है। इसके विपरीत कछुआ बहुत धीमी गति से स्वास लेता है फलतः उसकी उम्र २५० वर्ष की होती हैं। कुत्तों का स्वर भी तीव्र चलता है अतः उसकी आयु भी अन्य पशुओं की भाँति कम होती है। अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वर का आयु से घनिष्ठ संम्बन्ध है। स्वर घड़ी की चाभी की भाँति शरीर में संचित होता है और जिस गति से उसका व्यय होता है, प्राणी की आयु भी उसी प्रकार कम या अधिक होती है। इससे स्पष्ट है कि आयु का निर्धारण स्वर से ही किया जाता है।

व्यावहारिक जीवन में हम इसका प्रयोगात्मक स्वरूप देख सकते हैं। मांसाहारी प्राणी का स्वर तीव्र गति से चलता है, और शाकाहारी तथा अल्पाहारी प्राणी का स्वर धीमी गति से चलता है। गंभीरता पूर्वक देखें तो मांसाहारी तामसी प्रवृत्ति का होता है। उसमें काम, क्रोध आदि का प्रावल्य होता है। अतः दीर्घ जीवन के लिए निराहार तथा अल्पाहार का विधान है।

स्वर साधना से स्वर का अनावश्यक व्यय रोककर आयु के साथ ही शक्ति अर्जित की जा सकती है, इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है और आत्मतुष्टि के बाद भी योगिराज ने देश विदेश के विविध भागों में घूम–घूमकर इसका प्रदर्शन भी किया है जिसे देखकर लोग चकित रह गये हैं। जब श्वांस रोककर जमीन पर लेट जाते हैं तो भार सहित ट्रक, विशाल गजराज अथवा सड़क बनाने वाले भारी भरकम रोलर ऊपर से उतार दिये जाते हैं

किन्तु इसका आभास व परेशानी नहीं होती। इसी तरह स्वर योग के माध्यम से अपने सम्पूर्ण शरीर को योगिराज जी निर्जीव कर लेते हैं, जिसका परीक्षण कर चिकित्सक चकित रह जाते हैं, क्योंकि शरीर विज्ञान के अनुसार लगातार तीन मिनट तक ह्रदय की गति रुक जाने पर प्राणी मृत घोषित कर दिया जाता है। शरीर को शून्य करने की इस साधना को अनेकों बार भारी भीड़ के बीच दिखाया गया है जिसमें चोटी के राजनेता, पत्रकार, विद्वान, अधिकारी आदि उपस्थित रहे हैं, जिसके अनेकों प्रमाण–पत्र योगिराज के पास सुरक्षित हैं।

इस प्रकार के साहसिक कार्य करने वालों से निवेदन है कि ऐसे कार्य करने से पूर्व कुछ दिनों पवित्रता से स्वर साधना करें इसके बाद क्रम से थोड़ा–थोड़ा भार शरीर पर लेकर अभ्यास करें। अभ्यासी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपेक्षित आनुपातिक दबाव से शरीर के भीतर संचित वायु विविध इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलने का प्रयास करती हैं, अतः उसे नहीं रोका जा सके तो जीवन के लिए खतरा उपस्थित हो सकता है। अतः साधक को शक्तिपूर्वक अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना होगा तभी इस कार्य में सफलता मिल सकती है। जैसे आप ५ मि. तक श्वांस–गति रोक सकते हैं तो आधे समय में ही अपना प्रदर्शन समाप्त कर दें। आत्म रक्षा की दृष्टि से यह सावधानी आवश्यक है।

स्वांस की गति–स्वांस की स्वाभाविक गति में समय–समय पर परिवर्तन एवं स्थैर्य भी आता रहता है, जिसका स्वर विज्ञान में व्यापक विवेचन है। वैद्य जिस नाड़ी की गति देखकर व्यक्ति के स्वास्थ्य का निराकरण करते हैं, स्वर साधना में उसी प्रकार निरीक्षण किया जाता है। निम्न चार्ट के अनुसार श्वांस की गति को समझने में आसानी होगी।

नवजात शिशु एक	मिनट में	४० बार
दूसरे वर्ष के बाद	"	२५ बार
पाँचवें वर्ष के बाद	"	२० बार
बारहवें वर्ष के बाद	"	१६ बार स्वांस लेता है।

यह श्वांस की सामान्य गति है किन्तु चलने में १८ बार, बैठने आदि में १६ बार, शयन काल में ३६ बार, मैथुन काल में ४२ बार प्रति मिनट चलती है। इसीलिए दौड़ते तथा श्रम करते समय भी श्वांस की गति तेज हो जाती है। इसीलिए विषय तथा घोर शारीरिक श्रम करने वाले अल्पायु होते हैं।

विषयी व्यक्ति अपनी दोहरी शक्ति खोता है, तीव्र स्वास चलने से उसकी आयु घटती है और वीर्यक्षय से मूल्यवान शक्ति का ह्रास होता है। इसकी अपेक्षा संयमी पुरुष पूरी आयु तक स्वस्थ एवं तेजवान बना रहता है।

यदि हम एक मिनट तक अपने स्वर को रोक लेते हैं तो हमारे जीवन की अवधि उतनी देर के लिए बढ़ जाती है। क्योंकि एक मिनट तक श्वास रोकने से हमारे जीवन के खाते में १६ श्वांस की पूंजी संचित हो जाती है। हमारे प्राचीन महर्षियों के दीर्घ जीवन का रहस्य यही स्वर की प्रवृत्ति ही थी। वे लोग सतत् अभ्यास से प्राणायाम के द्वारा स्वर को ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर समाधि में प्रवेश कर जाते थे। समाधि की अवधि जितनी लम्बी होती थी उनकी आयु भी उतनी बढ़ जाती थी।

स्वर तीन प्रकार का होता है (१) सूर्य स्वर, (२) चन्द्रवर, (३) सुषुम्ना स्वर।

१. सूर्यस्वर : मेष, मिथुन, सिंह, तुला, कुम्भ, धनु, सूर्य की संक्राति होती है। इस प्रकार उदय और दक्षिण के सुभा शुभ का निर्णय होगा।

स्वामी : सूर्य शिव।

राशियाँ : मेष, कर्क, तुला, मकर।

दिन : मंगल, शनि रविवार।

नक्षत्र : आश्विनी, भरणी, कृतिका, उतराण, अर्कजित्, घनिष्ठ, सतभिषा, पूर्या, भाद्रपद रेवती तथा रोहणी।

२. चन्द्रस्वर : रात्रि और दिवस के मध्य चन्द सूर्य को बारह संक्राति होती है। उनमें से दिवस में वृत, कर्क, कन्या, वृश्चिक मकर और मीन ये ६ संक्रान्ति चन्द्रमा की मानी गयी है।

स्वामी : ब्रह्मा

दिन : सोम, बुद्ध, गुरु, शुक्र।

राशियाँ : वृष, सिंह, वृश्चित्, कुम्भ।

नक्षत्र : अश्लेषा, मघा, पूर्वा, फाल्गुनी, उत्तरा, हस्ति, चिता, स्वाती, विशाख्य, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुर्वाषाढ़।

सुषुभ्णास्वर : स्वामीः विष्णु

दिन : कोई दिन नहीं।

स्वर साधना की आश्चर्यजनक उपलब्धियों के प्रति चमत्कार पूर्ण परिणाम देखकर भी सहसा लोग विश्वास नही करते। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस साधना में शारीरिक शक्ति, मानसिक बल एवं अनिर्वचनीय आध्यात्मिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। बंगाल के महान सन्त लोकनाथ ब्रह्मचारी ने १३६ वर्ष की उम्र में (सन् १४४८) शरीर त्याग किया था। आन्ध्र प्रदेश के निवासी प्रख्यात सन्त तैलग स्वामी ने ७८ वर्ष की आयु में संन्यास लिया, ८८ वर्ष की उम्र में भी उनमें कोई बुढ़ापे के लक्षण नहीं थे। आपने २८० वर्ष की आयु में काशी में प्राण त्याग किया था। हिमालय तथा विन्ध्य की पहाड़ियों पर आज भी अनेक योगी साधना के बल पर सैकड़ों वर्षो से जीवित हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दाहिनी नासिका छिद्र से चलने वाली श्वांस क्रिया को सूर्य तथा वायीं नासिक को चन्द्र स्वर कहते हैं। इन्हें इड़ा और पिंगला नाम से भी सम्बोधित किया गया है। दोनों नासिका छिद्रों से समान रूप से चलने वाले स्वर को सुषुम्ना स्वर कहते हैं। इस प्रकार तीनों स्वर तथा समय गतिमान होकर जीवन का क्रम जारी रखते हैं। स्वरों का कार्य जब स्वाभाविक रूप से संपादित होता है तो हमारे शरीर में कोई विकार नहीं आने पाता। अतः जिस व्यक्ति स्वर का ढाई–ढाई घड़ी बाद स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता रहता है, कोई कारण नहीं है कि वह किसी प्रकार के रोग से संग्रसित हो। ऐसे व्यक्ति के पाँचो तत्व समान रूप से उदित होकर उसकी शारीरिक जीवन यात्रा को निर्विघ्न बनाये रखते हैं।

आप स्वयं अपने स्वर का परीक्षण करके देखें, यदि आपका स्वर स्वाभाविक रूप से ढाई घड़ी में परिवर्तित हो जाता है तो आपको किसी भी डाक्टर, वैद्य या हकीम की शरण में जांने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे व्यक्ति के शरीर में आया हुआ कोई भी विकार आकस्मिक होता है और स्वयं दूर हो जाता है।

'स्वरयोग' के साधक योगी व मनुष्य हमारे पूर्व प्रकाशित 'स्वरयोग' नामक ग्रन्थ से अच्छी तरह लाभ उठा सकते हैं क्योंकि वहाँ स्वर का विधिवत वर्णन किया गया है।

अष्टांग योग

योग के आठ अंग हैं इसलिए इसको अष्टांग योग कहते हैं, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ हैं। इनमें से पाँच–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान, समाधि ये तीनों अन्तरंग साधन हैं। अन्तरंग साधन नेतिरूप वैराग्य है जिसके द्वारा चित्त से अलग–अलग आत्मा को साक्षात्कार करने वाले विवेक जातिरूप सात्विक वृत्ति का निरोध होकर स्वरूप व स्थिति का लाभ होता है।

यमश्च नियमश्चैव तथैवासनमेव च।
प्राणायामस्तया ब्रह्मन्प्रत्याहाररस्ततः परम्।।
धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्चाष्टमं मुने।। ५।।

दर्शनोपनिषद

जिस योग की महिमा स्वयं श्री महेश्वर कहते हैं, जिसका सब शास्त्र नाना प्रकार से वर्णन करते हैं जिसके अनुष्ठान से रोग शोक दुःख दैन्य का नाश होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है और जिसमें जन्म और मरण सदा के लिए छूट जाते हैं, ऐसे त्रिताप नाशक, परम पावन योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ हैं।

यमः

अष्टांग योग का यम पहला अंग है, यह 'दस' प्रकार का होता है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य दयार्जनम्।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमादश।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच ये दस यम कहलाते हैं। इसका विवेचन हम अलग–अलग संक्षेप में करते हैं।

१. अहिंसा :

महाराज मनु ने अहिंसा को मोक्ष का परम साधन कहा है। अहिंसा

का अर्थ है—सदा और सर्वदा किसी भी प्राणी का अपकार न करना। हिंसा और अहिंसा बुद्धि द्वारा होती है, इसलिए हमें चाहिए कि बौद्धिक, वाचिक और कायिक, हिंसा का पूर्ण त्याग कर दें। जैसा हमने बताया है कि हिंसा वाणी द्वारा भी होती है। जैसे—किसी को अनिष्ट परामर्श देना, गाली गलौज करना, किसी का अपमान करना, किसी को कटुवचन बोलना आदि वाणी द्वारा बोल चाल से भी हिंसा का बोध होता है। इसके बाद शरीर की बारी आती है। जब हमारा बौद्धिक और वाचिक अहिंसा का अभ्यास हो जाय तो शारीरिक अहिंसा करते हैं। शारीरिक अहिंसा का अर्थ है—किसी को अपने शरीर मात्र से कोई दुख न हो, अर्थात् शरीर से किसी प्राणी का बध करना, स्वार्थवश किसी को तकलीफ देना एवं कार्य पूर्ति के लिये प्राणाघात करना या कराना आदि से भी हिंसा का बोध होता है।

२. सत्य :

किसी बात पर बुद्धि से निश्चय करना फिर उसे वाणी द्वारा प्रकट करना अन्त में वैसा व्यवहार करना पूर्ण सत्य है। धर्माधर्म, सत्यासत्य, वादप्रतिवाद आदि को सन्तुलित करके निर्णय कर लेना ही सत्य है। जब तक सुनी हुई बात का सब प्रकार से निश्चय करके बुद्धि स्वीकार नहीं कर लेती तब तक बोलना ठीक नहीं है। अर्थात् बुद्धि द्वारा लिये गये परामर्श द्वारा कही बात को बौद्धिक सत्य कहते हैं। इसके अलावा वाचिक सत्य पर ध्यान देते हैं। बहुधा लोग सत्य तो बोल देते हैं और बोलना ठीक भी है, परन्तु वह सत्य न बोले जो दूसरे को अप्रिय हो। अगर नेत्रहीन को अन्धा कहना सत्य है, चोर को चोर कहना सत्य है तो यह अप्रिय सत्य है, इसलिये नेत्रहीन को सूरदास या प्रज्ञा चक्षु आदि आदर सूचक शब्दों से सम्बोधित करना वाचिक सत्य है। इसके बाद बारी आती है शारीरिक सत्य की। इसमें बुद्धि, बचन, कर्म इन तीनों का समान रूप से मिलाकर उच्चारण करना शारीरिक सत्य है। इन्हीं सब कार्य—कलापों द्वारा ही सत्य का अनुसरण कर सकते हैं।

३. अस्तेय :

स्तेय का अर्थ है अनाधिकृत पदार्थों का अपना लेना। उसे बुद्धि, बचन कर्म से त्याग कर देना अस्तेय है। बौद्धिक स्तेय में दूसरों के पदार्थ, वस्तु, द्रव्य, सम्पति, नारी, विद्या आदि को लेकर विचार करना बौद्धिक स्तेय है।

परन्तु वाणी द्वारा किसी को गलत राह पर जाने का प्रोत्साहन देना वाचिक स्तेय है। शारीरिक स्तेय अपने शरीर मात्र से किसी का सामान चुराना, व्यापार में छल–बल का प्रयोग करना, घृणित एवं निन्दनीय कार्य करना शारीरिक स्तेय होता है। यही सब स्तेय का करण और कारण है।

४. ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रिय स्योपस्थर स्पसयमं

अर्थात्–गुप्तेन्द्रियों, मुत्रेन्द्रियों का संयम रखना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य भंग, बुद्धि द्वारा भी होता है। जैसे मन में रतिभावना उत्पन्न करना, गलत कल्पनायें करना, इन सभी से ब्रह्मचर्य भंग होता है। साथ ही साथ वाणी द्वारा भी ब्रह्मचर्य का ह्रास होता है, जैसे–अश्लील गीतों का सुनना या गाना, सौन्दर्य की स्तुति या निन्दा, एकान्तवार्तालाप करना, आदि से परे रहना ब्रह्मचर्य का पालन होता है। इन सब पर अधिकार होने पर शारीरिक ब्रह्मयर्च कहते हैं। जैसे कि स्त्रियों का स्पर्श, आलिंगन, चुम्बन, पर नारियों के साथ घुल मिलकर बैठना, यात्रा करना, मेले–ठेले में स्त्रियों के सम्पर्क में जाना आदि कर्म न करना, नर्सों से सेवा न लेना शारीरिक ब्रह्मचर्य है। एक सच्चा ब्रह्मचारी योगी इन सब कारणों से परे रहेगा तभी योग का अनुभव प्राप्त कर सकता है।

५. आर्जव (दया) :

दीन दुखियों के प्रति सम वेदना प्रकाश, सर्व प्राणी मात्र को अपने समान जानकर मन–वाणी और कर्म द्वारा अनुग्रह वा प्रेम को वेदान्त–वेत्ताओं ने दया कहा गया है।

पुत्र, मित्र बन्धु–बान्धव तो क्या शत्रु आदि के साथ भी कुटिलता का

त्याग करके सरलता का व्यवहार करना मन–वाणी और कर्म से प्रवृत्त और निवृत्ति से समभाव, एक सा वर्तना आर्जव कहा है।

६. क्षमा :

शक्तिमान होते हुए भी अपना अहित करने वाले को प्रतिफल (दण्ड) न देकर उदारता से माफी दे देना तथा सत्कार, तिरस्कार, मान–अपमान, प्रिय–अप्रिय को सह लेना क्षमा है। अथवा मन, वाणी, शरीर से शत्रुओं द्वारा कष्ट पहुँचाने पर भी बुद्धि में क्षोभ न होने का नाम क्षमा है।

७. धृति :

संसार में ज्ञान के बिना शान्ति नहीं मिलती और न मोक्ष होता है, ऐसा वेद का कथन है। उसको मान के जिस लक्ष्य को मन में धारण किया है, हजारों आपत्ति आने पर भी उसे न छोडने का नाम धृति है। अर्थ–हानि तथा अपने कुटुम्बीजनों के वियोग से अथवा पुनः सम्पदा प्राप्त होने से हर समय चित्त का समभाव रखना धृति है।

८. मिताहार :

आहार को नियमित रखे बिना यदि योग साधना का आरम्भ किया जाये तो नाना प्रकार के रोग होंगे और योग की किञ्चित मात्र भी सिद्धि नहीं होगी। इससे समझ लेना चाहिए कि योग साधन में आहार नियमित रहना अति आवश्यक है। ब्रह्मचर्य और आहार के संयम के बिना चाहे कितना भी ज्ञान, ध्यान, योग, जप, तप क्यों न किया जाय परमार्थ की सिद्धि नहीं होती। इसलिये योग शास्त्र क्यो, कल्याण के पथ प्रदर्शक सभी शास्त्र आहार को नियमित रखने को कहते हैं।

मनुष्यों के लिये जगत् में भोगने योग्य सभी पदार्थ भोग्य हैं। यदि नियमित रूप से यह भोग भोगे जायें तो शरीर, मन, प्राण और इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है जिससे तुष्टि और पुष्टि होकर अर्थ और परमार्थ की सिद्धि होती है। क्योंकि भोगने के लिए ही इस शरीर की प्राप्ति हुई है। मनुष्य मात्र का ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही है, परन्तु जड़ देह सम्पाद्य भौतिक पदार्थों को लोग भोगना नहीं जानते। संयम और नियम से नहीं रहते। जो

`लोग यह समझते हैं कि कम खाने से शरीर सूख जायेगा, पुष्टि नहीं होगी, जिससे और काम नहीं बनेगा, उन लोगों की यह धारणा इतनी भ्रमात्मक है कि इसके ही कारण लोग पूरी आयु न भोग कर अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं, क्योंकि जितने मनुष्य अधिक खाकर मरते हैं उतने कम खाकर नहीं मरते। संसार में अज्ञानियों ने अपने सुख की सीमा मैथुन और आहार में ही समझ रखी है, परन्तु धैर्य से विचार करके देखा जाये तो पता चलेगा कि इसका परिणाम महा भयंकर है।

६. शौच :

शौच बाह्य आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। मृत्तिका और जल से शरीर को शुद्धि रखना वाह्य शौच कहलाता है। राग द्वेष रहित होकर धार्मिक कर्म करते रहने से तथा अध्यात्मक ज्ञान द्वारा आन्तरिक शौच होता है।

१० अपरिग्रह :

हिंसा तथा उनकी क्षीणता में होने वाले बौद्धिक कष्टों को देखकर उन पर विचार करके उन्हें बुद्धि वचन कर्म से स्वीकार न करना अपरिग्रह है। जो योगी पाँचो इन्द्रियों को वश में करता हुआ इष्ट–अनिष्ट की प्राप्ति से सुख–दुःख का अनुभव नहीं करता वही बौद्धिक अपरिग्रह है। वाणी के अपरिग्रह में अनावश्यक याचना मनोरंजन में हासोपहास करना, अपने पास अधिक पदार्थों को रखने के लिये वाणी में प्रवृत्त होना ये वाणी परिग्रह में आते हैं। मौन रहना वाचिक अपरिग्रह का महान् साधन है। अपनी आवश्यकता से अधिक धन धान्य, वस्तु, भूमि का उपार्जन तथा सग्रह न करना शारीरिक अपरिग्रह है।

नियम

तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धान्त श्रवणञ्चैव हीर्मतीश्च जपोहुतम्।।
नियमादश संप्रोक्ता योगशास्त्र विशारदैः।।

(याज्ञवल्क्य संहिता—द्वितीय अध्याय)

१. तप :

भूख प्यास सहन करना, ब्रत रखना, आसनों का कष्ट सहना, मौन धारण करना, अध्ययन लीन होना, गर्मी सर्दी को सहन करना ही तप है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग—द्वेश का सहन करना, अपमानित होना, निन्दा से भी बुद्धि का सन्तुलन न खोना, विषयों में दौड़ने वाली इन्द्रियों और मन का दमन करते रहना, आसक्तियों से हटना बुद्धि का तप है। प्रत्येक पाप जो वाणी द्वारा होता है उसे न करना ही वाचिक तप है। शारीरिक तप में भूख प्यास, व्रत उपवास, आदि का सहन करना तो प्रसिद्ध है ही परन्तु शारीरिक तप हम तभी पूर्ण समझेंगे जब हम बुद्धिमानों का यथा योग्य सत्कार करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, शुद्धि और सरलता रखना सीख लें।

२. सन्तोष :

गोधन गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।।

पुरुषार्थ द्वारा धन से अधिक लालसा न रखना सन्तोष है। यश पाने पर हर्ष न होना और संसार में किसी प्रकार की शिकायत द्वेष बुद्धि में न उपजे उसे बौद्धिक सन्तोष कहते हैं। कटु वचन सुनना, अपमानित होकर आवेश में आना, गुरुजनों आदि से पीड़ित होकर प्रत्युत्तर न देना, यथा शक्ति मौन रहना, वाचालता का त्याग कर देना, यथा शक्ति मौन रहना, वाचालता का त्याग कर देना सन्तोष है। और शारीरिक सन्तोष में शरीर से किसी का अपकार, बलात्कार, अत्याचार आदि दुष्कर्म, हिंसा जैसे कार्य न करना, दीन

दुखियों की सेवा, ब्रह्मचर्य का पालन ही शारीरिक सन्तोष है, योगियों में सन्तोष रखना पहला लक्षण पाया जाता है।

३. आस्तिक्य :

वेद, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन आदि शास्त्रों में कहे हुये धर्मा–धर्म रूप फल के निर्णय में दृढ़ विश्वास करना आस्तिक्य कहा है। सर्व शक्तिमान ईश्वर में आस्था रखना भी आस्तिक्य है। नित्य नियम से पठन–पाठन करना स्वाध्याय कहा जाता है। कपाल के अन्दर, ब्रह्मरंध्र नामक स्थान है। ध्यान द्वारा वहाँ पर ॐ की आकृति बनाकर देखते रहने का प्रयत्न करना ही बौद्धिक स्वाध्याय है। वाचिक स्वाध्याय में मोक्ष सम्बन्धी धर्मग्रन्थ गुरु द्वारा अध्ययन कराना अथवा किसी भी भाषा में धार्मिक ग्रन्थ का आध्यात्मिक दृष्टि से पढ़ना वाचिक स्वाध्याय है। शारीरिक आस्तिक्य में किसी भी गूंगे अन्धे आदि को भी हम स्वाध्याय करा सकते हैं। स्वाध्याय मानव शरीर का पहला लक्ष्य होना चाहिये क्योंकि बगैर स्वाध्याय के हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। स्वाध्याय ही हमारे जीवन को एक नया रूप देकर अग्रसर होने में सहायक है।

४. दान :

न्याय से उपार्जन किया हुआ अल्प या अधिक धन जो कुछ श्रद्धायुक्त होकर सत्पात्र को दिया जाय उसका नाम दान है। यह पवित्र व्रत मनुष्य मात्र का धर्म है। अपने से हीन अवस्था वाले को अन्न, वस्त्र, धन, जन से सहायता करने का नाम दान है। देश काल और पात्र के भेद से, शुद्ध मन से, कामना रहित दिया यह दान महाशुभ फल वाला होता है। जो लोग शारीरिक मानसिक तप नहीं कर पाते, उनके लिये छोटे, मोटे पापों से मुक्त होने का एक मात्र उपाय केवल दान ही है। माया मुग्ध जीवों के पाप दान के साथ जाते हैं। दुरावस्थावश जो ग्रहिता दान लेते हैं वे दान क्या मानों दाता के पाप ही ग्रहण करते हैं। देने वाले ग्रहिता को पाप देकर उपकृत करते हैं और भाग्यहीन गृहिता भी दान लेकर उपकृत होते हैं।

५–६. ईश्वर पूजन, सिद्धान्त श्रवण :

मन वाणी एवं कर्म से ईश्वर की स्तुति–पूजा और स्मरण में लगे रहना एवं श्री प्रभु में अचल भक्ति करने का नाम ईश्वर पूजन है। प्रसन्न चित्त से, भक्ति, यथाशक्ति शास्त्रकथित श्री विष्णु, महेश्वर, शक्ति आदि अपने उपास्य इष्टदेव का श्रद्धा पूर्वक पूजन करना अथवा माता–पिता गुरु आदि का प्रसन्नता पूर्वक पूजन करना ही ईश्वर पूजन है। वेदान्त, शत–रुद्री आदि ग्रन्थों का पठन तथा गायत्री, प्रणव आदि मंत्र का जप करने से मनुष्य को सत्त्व गुण की सिद्धि होती है जिससे ज्ञान का उत्कर्ष होता है। इसलिए इसको स्वाध्याय कहा गया है। प्रामाणिक ग्रन्थ, वेद, उपनिषद्, दर्शन वेदान्त धर्म शास्त्र, आदि का पढ़ना समझना सिद्धान्त श्रवण है।

७. ह्री : (लज्जा)

वेद और लौकिक व्यवहार में जो कार्य कुत्सित समझे जाते हैं उनमें जो लज्जा की जाती है, उसको लज्जा कहते हैं। जो बातें व्यवहार में नहीं आती जैसे नंगा रहना, बिना प्रयोजन हास्य करना, वृद्धों के प्रति असम्मान या उनकी अवज्ञा करना, दूसरों का उपहास करना इत्यादि आचरण में नहीं लाना ही लज्जा कही जाती है।

८. मति :

कोई भी कार्य किया जाये उसको सोच समझकर करना, विहित कर्म का ग्रहण, निषिद्ध का त्याग और विधि विहित सब कर्मों में जो श्रद्धा है वह बुद्धिमत्ता मति कहलाती है।

९. जप :

शास्त्र विहित विधि पूर्वक गुरु से ग्रहण किया हुआ मन्त्र जपने का नाम जप है। यह सब उपासनाओं में आवश्यक है। अतएव मन्त्र–जप नियम से होना चाहिये। जप भी वाचिक वाणिक और शारीरिक होता है। वाचिक जप में वेद, शास्त्र धर्म ग्रन्थ पुराणादि का पठन–पाठन करके पुनः पुनः ध्यान किया जाय यही जप है। जिससे जीभ और ओंठ जरा भी न हिले और मन्त्र के पद, अक्षर संगति युक्त मन ही मन में पूरे शब्द का उच्चारण होता

रहे, उसको मानस जप कहते हैं। मानस जप उपाशु से हजार गुना फलदायक होता है।

१०. हवन :

योगी लोग योग साधक रूप यज्ञ को ब्रह्माग्नि में वासनाओं की आहुति देते हैं। और शाकल्य रूप इन्द्रियों के विषय व्यापार का हवन करते हैं जिससे ज्ञान रूप अग्नि प्रज्वलित होती है। प्राणायाम द्वारा योगाग्नि में प्रवेश करके स्वाहा हो जाते हैं। जो लोग योग शास्त्र कथित आध्यात्मिक ज्ञान यज्ञ नहीं कर सकते उन्हें धर्म शास्त्र कथित भौतिक पञ्च यज्ञ नित्य करने चाहिये। जो गृहस्थ देवता, पितृ आदि के निमित्त से पञ्च यज्ञ न करके अन्न ग्रहण करते हैं वे पाप भक्षण करते हैं ऐसा धर्मशास्त्रों का कथन है। इसके लिये धर्मशास्त्र के कथनानुसार पञ्च यज्ञ करके तब भोजन करना चाहिये।

आसन

आसन का सामान्य अर्थ :

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं, 'स्थिर सुखमासनम्' सुखपूर्वक देर तक बैठने का नाम ही आसन है।

सुखनैव भयेद्यास्मिन्नजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्।
आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुख विनासनम्।।

(उपनिषद्)

अर्थात् जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। अर्थात् आसन ऐसा होना चाहिये जिसमे व्यक्ति सुख पूर्वक अधिक देर तक बैठ सकें। शरीर और उसके अगों को विशेष स्थिति चाहे वह बैठना या खड़ा होना या शरीर को मोड़ना, सीधा रखना शरीर को मोड़कर, तानकर किसी विशेष स्थिति में रखने को ही आसन कहा जा सकता है।

आसनानि च तावन्ति यावन्त्यो जीवजातय:।
एतेषामतुलान्भेदान्विजानाति महेश्वर:।। १।।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितापुरा।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोऽशानां शतं कृतम्।। २।।

(घरेण्ड संहिता)

योग का तीसरा अंग आसन है। आसन इतने हैं कि जितनी जाति के जीव जन्तु हैं। क्योंकि जीव जन्तु असंख्य हैं इसलिये आसन भी असंख्य हैं। अवएव नाना विधि प्राणियों के नाना प्रकार के आसन होते हैं जिनकी संख्या की कल्पना भी नहीं कर सकते। उन सबका यथातथ्य भेद तो श्री महेश्वर ही जानते हैं, परन्तु प्रत्येक जीव अपने निर्दिष्ट आसन में बैठकर, लेटकर अथवा सोकर आराम करते हैं इसलिये हर एक योनि में प्रणियों की बैठक का नाम आसन है।

प्राणी आंसन में बैठकर अपने शरीर, मन, प्राण को विश्राम देते हैं।

जब शरीरधारी जीव अपने उदर निमित्त परिश्रम करके थक जाते हैं तब क्लान्ति को दूर करने के लिये सुखप्राप्ति की इच्छा से आसन लगा के बैठते हैं, लेटते हैं एवं सोते हैं। ऐसा करने से सुख पाते हैं। इसलिए जिसमें सुख प्राप्त हो वही आसन है। पहले भी शिव ने चौरासी लाख आसन कहे हैं। शास्त्र में चौरासी लाख योनियाँ कही हैं। इसमें चौरासी लाख आसन में सोलह सौ विशेषत्व कही हैं। अर्थात् मनुष्यों के रोग विशेष के लिये लाभदायक हैं। इसलिये कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने से किसी–किसी साधक को आवश्यकतानुसार ये सब आसन स्वतः हो जाते हैं। इन सब आसनों की शिक्षा देना मनुष्य की बुद्धि से परे है। जो हमसे सुलभ हो पाया है उनमें से कुछ अंश आपके सामने प्रस्तुत है जिनका पाठक उपयोग कर सकते हैं। उसके पहले कुछ चेतावनी देते हैं जिसको पाठक ध्यान में रखते हुये अभ्यास करें।

आसन करते समय ध्यान देने योग्य कुछ बातें

१. शरीर और वस्त्र को साफ रखें।

२. आसन हमेशा खुली व शुद्ध हवा में करना चाहिये।

३. आसन हमेशा खाली पेट करना चाहिये। चाय आदि कुछ भी न लें क्योंकि ये पेट में अम्ल से विष बन जाता है।

४. आसन कभी भी जल्दीबाजी में न करें।

५. आसन हमेशा प्रसन्नचित्त होकर करना चाहिये।

६. आसन करते समय किसी का अनावश्यक रूप से आना या कोई अप्रिय चर्चा न होनी चाहिये।

७. आसन प्रात: या सन्ध्या के समय करना चाहिये। आसन और भोजन के बीच चार घंटे का अन्तर रखें। आसन करने के तत्काल बाद कुछ न खाना चाहिये।

८. योगाभ्यासी को सदा सात्विक भोजन करना चाहिये और योगाभ्यासी को दूध जरूर लेना चाहिये ताकि शरीर एवं अंगों का विकास होता रहे।

९. साधारण आसन पहले और कठिन आसन बाद में करें।

१०. टूटे-फूटे अंगों वाले व्यक्तियों को सामान्य आसन ही करना चाहिये।

११. आसनों को करते समय बीच-बीच में शवासन जरूर करें।

१२. रजस्वला होने पर स्त्रिया ४-५ दिन तक पद्मासन या गोमुखासन ही करें।

१३. गर्भ धारण करने पर स्त्रियाँ केवल तीन मास तक ही आसन कर सकती हैं।

१४. स्वरंयुक्त आसनों तथा कठिन आसनों को अत्यन्त सम्भाल कर करें।

१५. अपनी आसन-पद्धति में बिना जानकार व्यक्ति के कहे परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

वज्रासन

विधि – दोनों जाँघों के आन्तरिक भाग को दोनों पिण्डलियों से मिलाकर घुटनों को आगे और पैरों को पीछे की ओर मोड़कर वज्राकृति बनाते हुए नितम्बों से कुछ आगे ले जाकर दोनों एड़ियों को मिलाकर नितम्बों को इन पर टिकाकर बैठ जाएँ। घटनों पर हथेलियाँ रखकर समकाय ग्रीव होकर बैठ जाँय, दृष्टि को सामने सीध में रखें।

श्वास प्रक्रिया –

वज्रासन में श्वास प्रक्रिया सामान्य रहती है।

I<8

लाभ – यह एक ऐसा आसन है जो कि आप खाना खाने के बाद भी कर सकते हैं। इस आसन में मेरुदण्ड सीधा होने से पाचन शक्ति ठीक ढंग से काम करती है जिसमें ब्लडप्रेशर, वीर्य दोष, साईटिका, घुटनों का दर्द, पीलिया आदि रोग ठीक होता है। इसी आसन में बैठकर भस्तिका प्राणायाम भी किया जा सकता है। ध्यान रहे इस आसन में बैठने पर शरीर मेरुदण्ड से लेकर सिर तक एक सीध में रखें। शरीर में अकड़न न आने दें।

निषेध – पैरों के टूटे अंगों वाले व्यक्ति इसे न करें।

अर्धमत्स्येन्द्रासन

विधि – जमीन पर बैठकर बाएं पैर की एड़ी दक्षिण नितम्ब के नीचे रखकर बाएं पाँव के बाएं घुटने में दक्षिण भाग की ओर भूमि पर रख लें। फिर बायाँ हस्त दायें घुटने के बाहर ले जाकर दक्षिण पैर के पंजों को पकड़ें। दायाँ हाथ पीठ की तरफ घुमाकर दक्षिण जाँघ की ओर सटाकर गर्दन घुमाकर पीठ देखने का अभ्यास करें।

श्वांस प्रक्रिया – सामान्य।

लाभ – यह आसन कब्ज, वीर्य दोष मिटाता है। साथ में हार्नियां, मधुमेह को दूर करके पाचन शक्ति बढ़ाता हे।

पद्मासन

विधि- सर्वप्रथम बाएँ पैर को दक्षिण जांघमूल में एवं दाएँ पैर को वाम जांघामूल में ऐसे लगाएँ कि नाभि के नीचे पेडू के मध्य में दोनों एड़ियाँ आ जुड़ें और दोनों पादतल दोनों जाँघों पर ठहर जायँ। अब मेरुदण्ड ग्रीव शरीर को सीधा रखकर हाथों को घुटने पर ज्ञानमुद्रा बनाकर रख लें। दृष्टि को नासाग्र पर स्थिर करें तथा शान्त बैठ जाएँ।
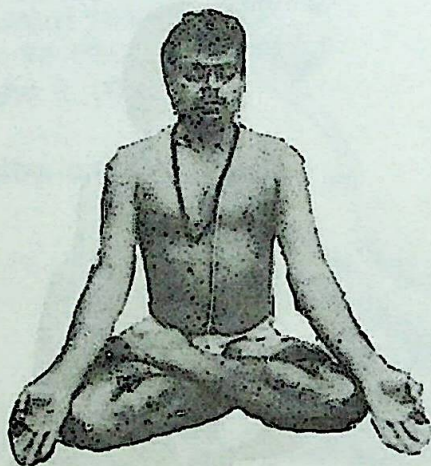
श्वास प्रक्रिया - *श्वास प्रक्रिया सामान्य या प्राणायाम की विधि।*

लाभ - इस आसन के अभ्यास से कटिभाग तथा इससे निचले भाग की नस-नाड़ियों को दृढ़ और लचकीला बनाता हैं श्वसन क्रिया को सम रखता है। इन्द्रियों और मन को शान्त कर यह विशेष रूप से एकाग्रता का सम्पादन करता है। अजीर्ण, आँव, वात, आँतों के रोग, वीर्य दोष को ठीक करता है।

निषेध - टूटे-फूटे अंगों वाले व्यक्ति इसे न करें। दोनों पैर के घुटने जमीन न छोड़े और रक्तचाप वाले व्यक्ति इसे न करें।

उत्तानपाद आसन

विधि – पीठ के बल भूमि पर लेट जायें। दोनों हथेलियाँ जाँघों के दोनों ओर भूमि पर स्थापित करें। फिर दोनों पैरों को लगभग छः इंच भूमि से ऊँचा उठाकर पंजों का खिंचाव सामने देते हुए पैरों को सीधा तान दें। दृष्टि सामने पैरों के अँगठों पर स्थिर रखें।

श्वांस प्रक्रिया – इस आसन के दौरान जब पैर जमीन से उठाये तो श्वांस बाहर लें जब पैर उठा हो तो श्वांस रुका होना चाहिये पैर को जमीन पर लगाते हुए श्वांस सामान्य कर दें।

लाभ – इस आसन के अभ्यास से हार्नियां, आंत उतरना, फाइलेरिया, पेट में गैस पैदा होना, कब्ज और टांगों की दुर्बलता और मोटापा कम कर रक्त शुद्धि करता है। हृदय बलवान, नेत्र ज्योति तीव्र, सिर पीड़ा दूर कर पाचन शक्ति तीव्र करता है।

निषेध – रक्तचाप वाले व्यक्ति इसे न करें, महिलाएँ गर्भावस्था में इसे न करें।

पवनमुक्तासन

विधि - सर्वप्रथम पीठ के बल चित्त लेट जाइये. अब बाएं पैर को मोड़कर सीने से सटाइये और दोनों हाथों से मुड़े हुए पैर को बांधकर घुटने से नासिका को सटाने का प्रयास करें। पूर्वावस्था में आने के बाद यही आसन दूसरे पैर से करना चाहिए। एक-एक पैर का अभ्यास करने के बाद दोनों पैरों से एक साथ मोड़कर करें। यह क्रिया तीनबार करें।
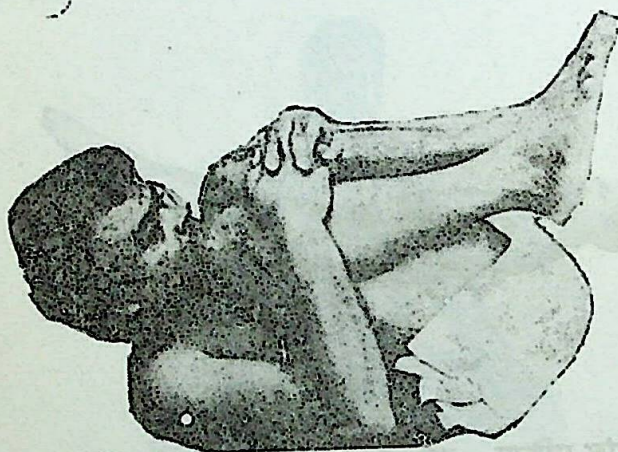
श्वांस प्रक्रिया - पैर ऊपर ले जाते समय श्वांस को बाहर निकाल दें और पैर खोलते हुए श्वांस ग्रहण करें।

निषेध - हाई ब्लडप्रेसर, एवं हृदय के रोगी इसे न करें।

लाभ - इस आसन से उदर तथा हृदय सम्बन्धी तमाम विकार दूर होते हैं। वायु विकार से पीड़ित प्राणी के लिए यह आसन रामबाण सिद्ध होता है।

नौकासन

विधि – सीधे पीठ के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों हाथों को पैर के सीध में रखें। टाँगों को भूमिं से इतना उठायें कि कमर जमीन से उठ जाए साथ ही साथ गर्दन व सिर भी पैर के बराबर उठा लें. हाथ व घुटने मुड़ने न पाए। पैर के अंगूठे व नेत्र एक सीध. में रखे।

श्वांस प्रक्रिया – पैर को उठाते समय श्वांस थोड़ा उदर से बाहर रखकर रोके रहें। श्वांस लेते समय पूर्व स्थित में आ जाएं।

लाभ – यह आसन अनावश्यक उद्गार (डकार) हिचकियाँ दूर करता है औंर छोटी बड़ी आंतों को बल प्रदान करता है।

निषेध – कमर दर्द, रक्तचाप एवं सिर दर्द वाले व्यक्ति इसे न करें।

शलभआसन

विधि – भूमि पर पेट के बल लेटें, ठुड्डी भूमि पर लगी हुई हो और हाथ-पैर को बाजू के सीध शरीर के साथ लगायें। शरीर का वजन बाजुओं पर लाते हुए दोनों टाँगों को जहाँ तक हो सके पीछे की ओर उठाते हुए यथा शक्ति रोकें। यह क्रिया अभ्यास के दौरान एक-एक पैर से करते हैं और पूर्ण शलभ आसन दोनों पैरों के साथ किया जाता है।

श्वांस प्रक्रिया – गहरी श्वांस लें और श्वांस को रोककर पूरे शरीर को अकड़कर रोकें। श्वांस को छोड़ना हो तो पैर जमीन पर रहे।

लाभ – कब्ज को दूर करके पेट पतंला करने में मदद करता है। अग्निमन्दता के विकार दूर होते हैं, तथा भूख ठीक लगती है। गर्भाशय एवं मासिक धर्म सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। कमर दर्द के लिए यह आसन लाभप्रद है।

निषेध – गर्भ, उदर पीड़ित, रक्तचाप एवं घुटने के दर्द में यह आसन न करें।

सर्पासन

विधि- बाजू शरीर से सीधे लगाकर, भूमि पर पेट के बल लेटें माथा भूमि पर रखें, दोनों बाजुओं को कोहनियों से मोड़कर हथेलियां बगल के दोनों तरफ रखे। धीरे से सिर को ऊपर उठायें, गर्दन अधिक से अधिक पीछे की ओर गोड़े अब बाजुओं का सहारा लेते हुए सीने गर्दन पेट का सारा भाग कमर तक उठाकर इसी स्थिति में रहे। दोनों पैर परस्पर सर्प की पूँछ जैसी मिले होने चाहिये।
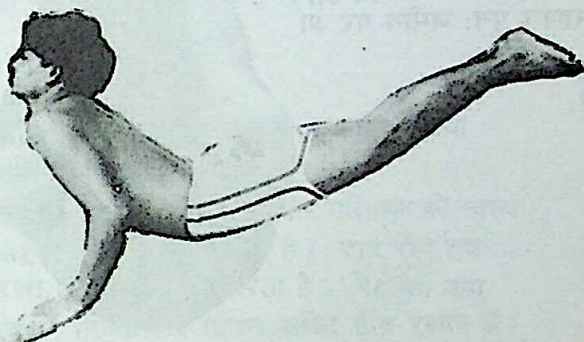
श्वांस प्रक्रिया - गर्दन उठाते समय पूरक कर थोड़ा श्वांस उदर स्थल में रखकर कुम्भक किये रहें। जब गर्दन नीचे करना हो श्वांस को छोड़ दें।

लाभ - इसके अभ्यास से दमा और कफ के विकार, ग्रीवा, छाती उदर, कटि, आंत पैर भुजाएँ, हथेलियाँ, पुष्ट-स्वस्थ, रीढ़ की अस्थियाँ लचकीली बनी रहती हैं, गण्डमाला, गुल्म आदि रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

निषेध - ज्वर पीड़ित, रक्तचाप एवं गर्भावस्था में महिलायें इसे न करें।

धनुरासन

विधि – भूमि पर पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को पीठ की ओर ले जाकर घुटनों को मोड़कर पैरों को भी पीठ की ओर बढ़ा लें। दोनों हाथों से दोनों पैरों का टखना इस प्रकार पकड़कर ऊपर की ओर ताने कि पैरों की अँगुलियाँ भुजाओं की ओर हो जाए। नेत्र आसमान की ओर हों। इस प्रकार प्रत्यंचा लगे धनुष के समान शरीर बन जायेगा। यथा सम्भव इस स्थिति में रहकर पुन: जमीन पर आ जाये।

श्वांस प्रक्रिया – पूरक करके श्वांस को कुम्भक स्थिति में रखें। श्वांस रोके हुए हाथों को छोड़कर आराम करें।

लाभ – इस आसन से मेरुदण्ड तथा उदर पर विशेष दबाव पड़ने से रीढ़ की शेरूकाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता हैं जिससे समस्त मेरुदण्ड लचकीला, मन्दाग्नि, तीव्र, वायुविकार, स्कन्धों से लेकर भुजायें, हाथ तथा जाँघ, घुटनों पैरों की मांसपेशियां समस्त नस-नाड़ियां पुष्ट होती है और समय अनुसार कद भी बढ़ाता है।

निषेध – ध्यान रहे हृदय की धड़कन, रक्तचाप एवं कमजोर शरीर वाले इस आसन को कदापि न करें।

सर्वांगासन

विधि - पीठ के सहारे चित्त होकर लेट जाएं और दोनों टांगें और पैर परस्पर जुड़े रहें। अब कंधों से पैरों तक का समस्त भाग ऊपर की ओर सीधा उठायें। दोनों भुजायें कोहनी तक दृढ़ता के साथ भूमि से जुटी रहें। फिर कोहनी के मोड़ से हाथों को उठाकर कमर को पकड़ कर कंधों से पैरों तक सारे शरीर को सीधा तान दें। समस्त शरीर दोनों कंधों और ग्रीव पर आ ठहरें। इस प्रकार टांगों को सीधा करते हुए तथा पैरों को मिलाते हुए यथाशक्ति इसी स्थिति में रहकर छोड़ दें।

श्वांस प्रक्रिया - इस आसन में श्वांस प्रक्रिया सामान्य रहती है।

लाभ - रक्त शुद्धि, हृदय और मस्तिष्क को स्वस्थ कर नेत्र ज्योति को बढ़ाता है। वात रोग तथा रक्त विकार को दूर करता है। पेट की वायु बाहर निकालकर पाचन शक्ति तीव्र रखता है।

निषेध - रक्त चाप, पेट दर्द एवं हार्नियां के मरीज इसे कदापि न करें।
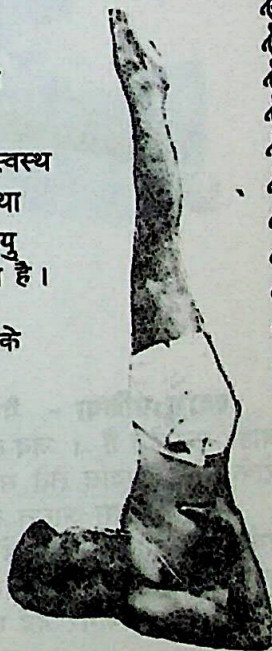
हलासन

विधि – पीठ के बल सीधे लेट जायें। दोनों टाँगों को परस्पर मिलाकर सर्वांगासन की मुद्रा में आते हुए दोनों टांगों को परस्पर मिलाकर सिर के पीछे ले जाकर सीधा रखते हुए पैर से पंजों को भूमि पर टिका दें। हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूँथ कर दोनों भुजाओं को कस लें।

श्वांस प्रक्रिया – पैर को पीछे ले जाते हुए श्वांस को उदर से बाहर कर देते हैं। जब तक पैर जमीन पर झुका रहे तब तक श्वांस रोके रहें। श्वांस लेते समय पैर को वापस जमीन पर कर दें।

लाभ – इस आसन के अभ्यास से सीना और पेट को पुष्ट कर रक्त का यथावत संचार होता है। जठराग्नि की वृद्धि होती है उदर वृद्धि एवं अतड़ियों के दुर्बलता का नाश हो जाता है।

निषेध – कमर दर्द एवं रक्त चाप वाले व्यक्ति इसे न करें।

पश्चिमोत्तानासन

विधि – सीधे बैठकर पैर सामने फैलाकर परस्पर सटा दें। अब गर्दन को आगे झुकाते हुए मस्तक पैर में घुटने से सटाकर दोनों हाथों से पैरों का तलवा या अंगूठा पकड़ कर हाथों के घुट़ने को जमीन से चिपका कर यथा शक्ति रोकें।
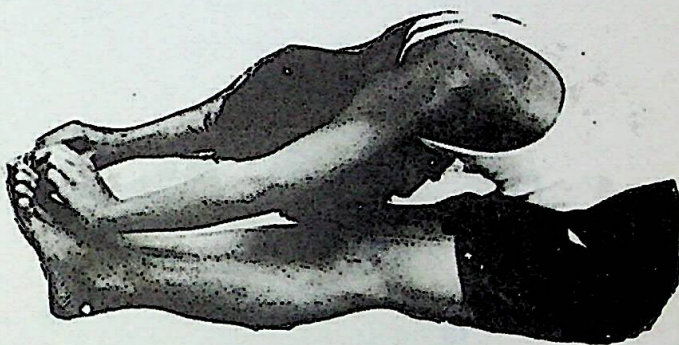
श्वांस प्रक्रिया – श्वांस को बाहर निकालकर उड्डियानबन्ध लगाकर यथाशक्ति रोकें, ध्यान रहे पैर जमीन से न उठने पावे।

लाभ – इस आसन को नियम से करने वाले साधक का पेट का निकलना बन्द होता है। साथ ही साथ वीर्य दोष, स्वप्न दोष, साइटिका, अजीर्ण, अपच, कब्ज आदि रोग ठीक होते हैं। कंठ माला, नजला, जुकाम आदि भी ठीक होते हैं।

निषेध – कमर दर्द एवं रक्तचाप वाले व्यक्ति न करें।

मत्स्यासन

विधि – पद्मासन लगाकर बैठ जायँ। इसके बाद पीछे की ओर हाथ में बल का सहारा लेते हुए इस प्रकार झुके कि सिर की शिखा का भाग जमीन पर टि जाय। ठुड्डी ऊपर मध्य आकाश की ओर होगी। छाती ऊपर तनी हुई होनी चाहिए। हाथों में मध्य अगुलियों से पैर के अंगूठे का भाग पकड़ लें, ध्यान रहे जाँघ जमीन न छोड़े।
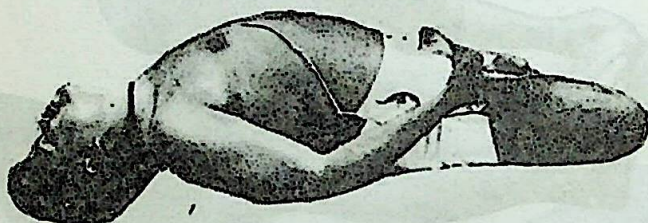
श्वांस प्रक्रिया – सामान्य।

लाभ – इस आसन से शरीर के सभी अंगों का व्यायाम होता है। अतएव सब अंग पुष्ट होते हैं मेरुदण्ड लचीला होता है, यह उदर सम्बन्धी विकारों को दूर करके अंगों को पुष्ट बनाता है।

निषेध – महिलायें इसे गर्भावस्था में न करें। बाकी समय उनके लिए ज्यादा लाभकारी है। केवल रक्तचाप के मरीजों के लिए वंर्जित है।

[illegible]

विधि – दोनों हाथों को ६५° के कोण पर फैलावें मिली हुई हथेलियों को जमीन पर रखिए। पंजा घुटनों के बीच में रखते हुये कोहनी को मोड़कर पेट के मध्य भाग में मिलाइए। शरीर को कोहनियों पर तोलते हुए घुटनों को पीछे की ओर टाँगों को सीधा रखें। पैर शरीर को दोनों हाथों पर संतुलित कीजिये यथा शक्ति रोकें।

श्वासं प्रक्रिया – पूरक द्वारा थोड़ा श्वासं उदर में रखते हैं।

लाभ – पाचन शक्ति ठीक होती है। पेट में रूकी वायु से उत्पन्न विकार दूर होते हैं मन्दाग्नि और वद्धकोष्ठता दूर होती है। भुजदण्ड सुदृढ़ होते हैं। चेहरा कान्तिमान होता है।

निषेध – हाथ के टूटे-फूटे वाले व्यक्ति रक्तचाप एवं पेट या कृत्रिम सीने के उपयोग वाले व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

सिंहासन

विधि – जैसा कि इस आसन के नाम से ही स्पष्ट है, अपने दोनों पैरों को पीछे को और दोनों ऐड़ियों पर नितम्ब को स्थापित कर कुछ भाग सामने की ओर सीध में झुकते हुए दोनों घुटनों के बीच में दोनों हथेलियों को इस प्रकार जमीन पर रखें जिससे अंगुलियाँ भीतर की ओर झुकी रहें। अब बलपूर्वक पूरा मुख खोलते हुए आवें और मस्तक पर खिचाव देने का यत्न करें। और अभ्यासी सिंह की कल्पना करें और अपने को उसी अनुरूप में डालने के लिए प्रयत्न करें।

लाभ – इस आसन से सीना तथा दिल पुष्ट होता है नाड़ी संस्थान में दृढ़ता आती है, पेट का भारीपन दूर होता है, नेत्र ज्योति बढ़ती है एवं भुजाकृति सौम्य होती है। पौरुष एवं मनोबल बढ़ता है। साथ में चेहरे पर कान्ति भी आती है।

सिद्धासन

विधिः— बाएं पाँव की एंड़ी को गुदा और मूत्रेद्रिय के मध्य (सिडनी) स्थापित कर दायें पैर को एंड़ी ऊपर नाभी के नीचे लगाते हुए मेरुदण्ड तथा गर्दन को सीधा रखते हुए नेत्र मध्य रूप में सामनें रखे। अब दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में बांधकर घुटनों पर ले जायं और घुटनो को जमीन पर सटाते हुए यथा समय बैठे रहें।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य
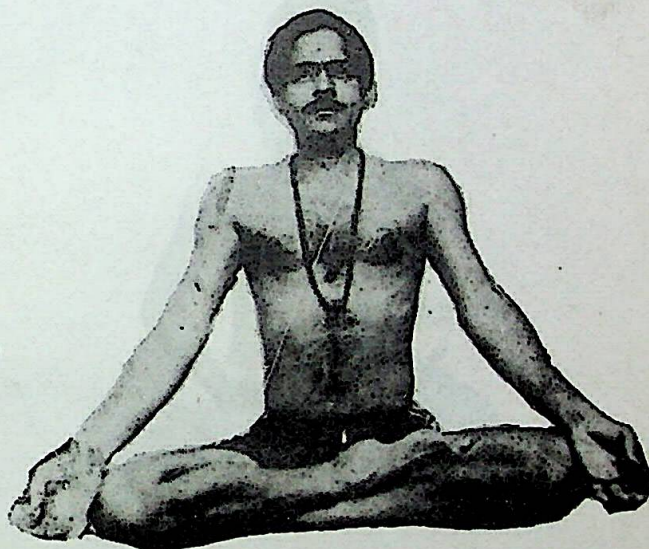
लाभः— योगियों को यह आसन बड़ा.ही महत्वपूर्ण है। इस आसन में मूलबन्ध स्वयमेव लग जाता है। सुषुम्ना मार्ग खुलता है। मन प्राण और इन्द्रियों में स्थिरता आती है। प्राण तथा शुक्र—उर्द्ध गमन करते हैं और कामेच्छा शान्त होती है।

ब्रह्मांजलि आसन

विधिः– पहले दोनों पैरों को फैलाकर बैठें पैर एक दूसरे पर चढ़ा लें। तत्पश्चात् दाहिनी हथेलि को बायें हथेलि पर लें गर्दन और मेंरुदण्ड एक सीध में रहे श्वांस क्रिया दोनों स्वरों से तीन बार लें और छोड़ें।
श्वांस प्रक्रियाः– दोनों स्वरों से सामान्य स्वांस लें
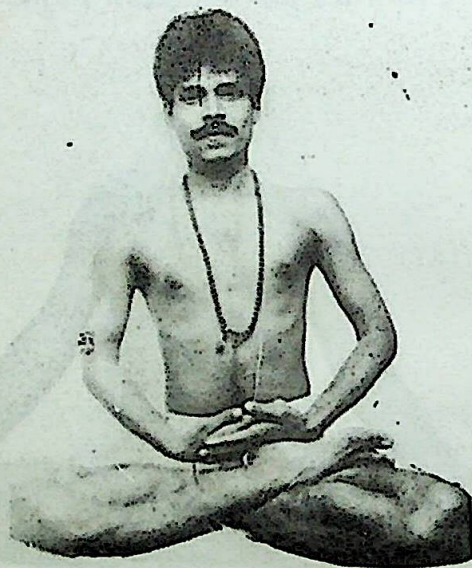
लाभः– ब्रह्मंजलि का प्रमुख कार्य चित्त वृत्तियों का निरोधकर मन को चंचलता को रोकता है। इस आसन से उदर ह्रदय तथा मस्तिष्क के अनेक विकार दूर होते हैं।

कमलासन

विधिः— पूर्ववत् पद्मासन जब सही ढ़ग से लग जाय तब दोनो हाथों को पीछे ले जाते हुए दाहिने हाथ से बायें पैर के अंगूठे बायें हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ें, श्वांस क्रिया दोनों नासिका से सम चलती रहे।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य
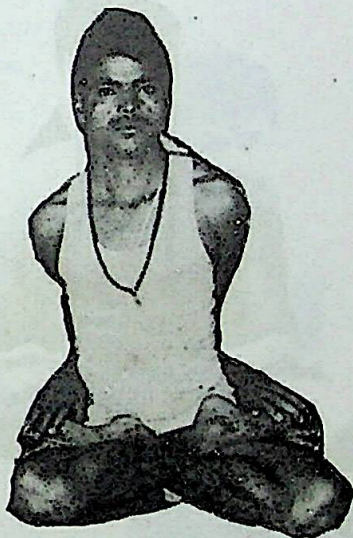
लाभः— कमर दर्द, घुटनों का दर्द, जाघों का दर्द, अतड़ी उतरना आदि रोगों से मुक्ति दिलाता है। साथ में सीना और कमर पुष्ट होता है, खांसी, दमा विशेषकर ठीक हो जाते हैं।

उत्थितपद्मासन

विधिः— पूर्ववत् पद्मासन जब सही ढंग से लग जाय तब दोनों हाथों को दोनों ओर जमीन पर टिका कर हथेलियों पर शरीर का भार डालते हुए जमीन से ऊपर दृष्टि सामने रखते हुए सीना को तानें। श्वांस—क्रिया सामान्य ढंग से लेते रहें।

श्वांस प्रक्रियाः— जब शरीर उठा हो तो श्वांस रूकी हुई होनी चाहिए।
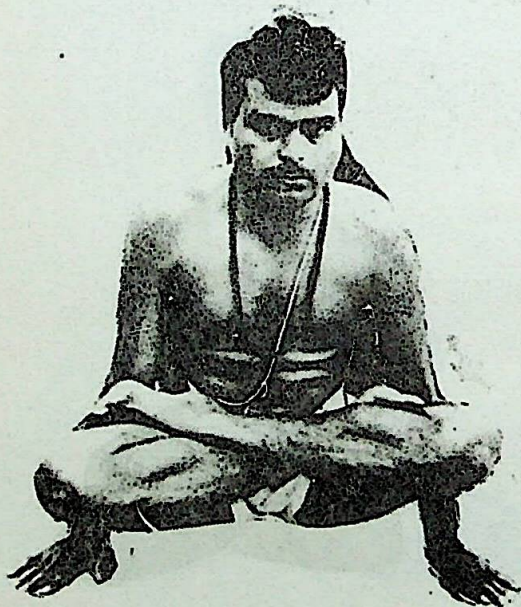
लाभः— पाचन क्रिया सुधरता है। कब्ज दूर होता है बाहें, कलाइयाँ जाघें दृढ़ होती हैं।

गोमुखासन

विधिः— बायें पैर को एंड़ी नितम्ब के समीप में रखकर पैरों को मोड़कर फिर बायें नितम्ब के निकट रखकर पैर को मोड़ कर बैठ जाय। जिस तरह हम बज्रासन लगाते हैं, इसके बाद दाहिने हाथ को ऊपर उठाते हुए पीठ पर रखें और कोहनी को मोड़ ले। अब बायें हाथ को बगल से पीठ पर सटाते हुए दोनों हाथों की लें। गर्दन और रीढ़ सीधा रखें। अगुलियों को परस्पर एक दूसरे से जकड़ श्वांस सामान्य रहे इस क्रिया को पुनः दूसरे हाथ से बारी–बारी कई बार करें।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य
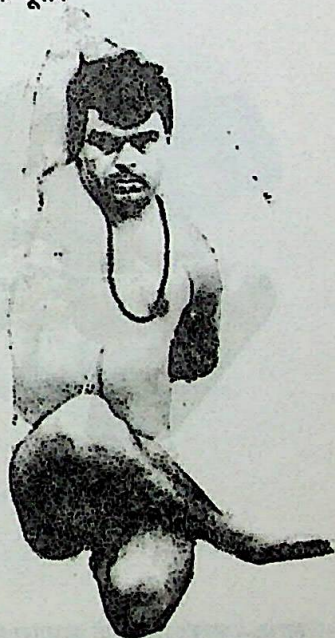
लाभः— इससे मूत्राशय सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। पैर का गठिया रोग दूर होता है। जिसे नींद न आती हो वे सोने से पहले आधा घण्टा प्रतिदिन करें तो अच्छी निद्रा आयेगी।

पादांगुष्ठ–नासिकास्पर्श आसन

विधि::– सीधे पीठ के बल लेट जायें, अब श्वांस अन्दर भरकर, पैरो को ऊपर उठाकर, हाथों से पकड़कर, बिना सिर उठाये, पैरो के अगूठों से नासिका का अग्रभाग स्पर्श करें, यथा सम्भव इस स्थिति में रहकर रेचक करते समय पूर्व स्थिति में आ जाएं।

श्वांस प्रक्रिया:–जब पैर नाक के पास हो तो श्वांस उदर से बाहर हो।

लाभ:– इस आसन के अभ्यास से भेरुदण्ड लचीला होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है, कमर दर्द नहीं होता।

निषेध:– उक्त रक्त चाप वाले व्यक्ति इसे न करें।

हंसासन

विधिः– जमीन पर सीधे खड़े होकर आगे झुककर दोनों हथेलियों को पैरो के सामने भूमि पर दृढ़ता से टिका दें। अब दोनो दोनों घुटनों को मोड़कर दोनों काखों के बीच जमाते हुए पैरो को ऊपर सटाते हुए शरीर का सारा भार हाथों पर डालकर इस प्रकार थमे रहें, ताकि सन्तुलन बना रहे।

श्वांस प्रक्रियाः– श्वांस क्रिया सामान्य रहे।

लाभः– यह आसन सीना, भुजा की मांस पेशियाँ और नस–नाड़ियों को सुसंगठित तथा दृढ़ बनता है।

धनुआकर्षण आसन

विधिः— दोनों पैरो को सीधा फैलाकर बैंठे तत् पश्चात वामहस्त से दक्षिण पैर का अगूँठा दृढ़ता से पकड़े अब बाँये पैर को दायें अगूँठे पर रखकर हाथ से अगूँठे को खीचते हुए पैर मोड़कर कान तक इस तरह खींचे जैसे कि तीर कमान से खींचा जाता है। यह क्रिया दोनों पैरों से करें। श्वांस सामान्य ढंग से लेते रहें।
श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।
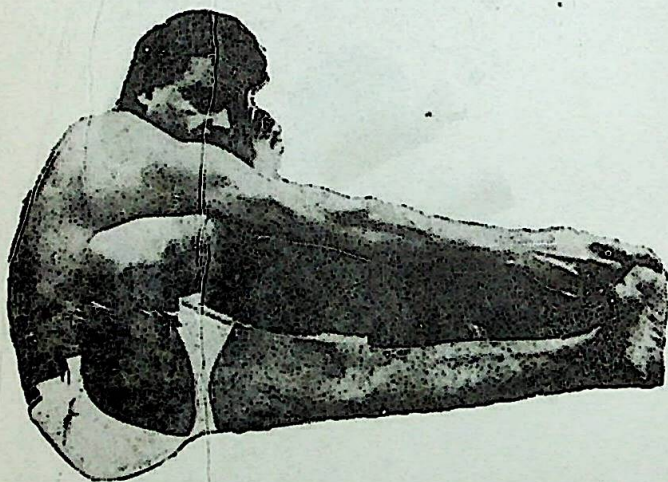
लाभः— इस आसन से जानु लचीला व पुष्ट हो जाते हैं। प्राण निरोध से प्राण पुष्ट हो जाता है।

कुक्कुटासन

विधिः— सर्वप्रथम पद्मासन लगाकर दाहिने हाथ को दाहिने पैर के जाँघ और पिण्डली के बीच, बायें हाथ को दाये पैर के जांघ और पिण्डली के बीच कोहनी तक ले जाकर दोनों हाथों के पंजों पर शरीर टिका कर सारा भार हाथों पर देते हुए जमीन से उठाकर यथा शक्ति रुके रहें। दृष्टि सामने रहे श्वास सामान्य रहे।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।

लाभः— इसके अभ्यास से पाचन शक्ति बढ़ती है, आमाशय और पक्काशय को शक्ति प्राप्त होती है। बाहों कन्धों और सीना को सुदृढ़ बनाता है।

कूर्मासन

विधिः– इस आसन को करने के लिए घुटनों को मोड़कर पैर के दोनों पन्जों को फैलाते हुए इस प्रकार बैठें ताकि दोनों घुटनों के बीच जगह रिक्त रहे और घुटनों के बीच में दोनों पांव आपस में सटे रहें। अब गर्दन के सीध में पीठ को रखते हुए नीचे की ओर झुकें, और हाथ के दोनों पंजो को फैलाकर दोनों घुटनों के बगल में रखकर उन पर जोर दें ताकि स्कन्ध घुटनो से सटने न पावें। इस आसन में धीमी गति से श्वांस ग्रहण करना चाहिए।

श्वांस प्रक्रियाः– सामान्य।

लाभः– यह आसन कुडणलिनी जाग्रत करने में सहायक होता है, बवासीर जैसे रोग को दूर करने में कूर्मासन सक्षम है।

सेतुबन्ध आसन

विधिः— सर्वप्रथम हम सर्वाग्ङ आसन करके उसके बाद दोनों हाथों से कमर को दृढ़ता से पकड़ कर धीरे–धीरे दोनों पैरों को पृथ्वी पर लगा कर टिका दें, कमर को ऊँचा कर पुल जैसी आकृति बनायें श्वांस सामान्य रहे।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।
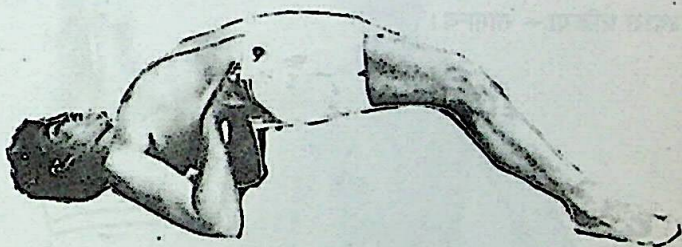
लाभः— इसके अभ्यास से आतों के रोग दूर होते हैं, भूख बढ़ती है। पीठ और कमर पीड़ा में यह आसन सर्वथा लाभ प्रद है।

निषेधः— उच्च रक्त चाप, उदर आपरेशन व हार्निया रोग वाले व्यक्ति इसे न करें।

शीर्षासन

विधिः— यह आसन सभी आसनों में श्रेष्ठ माना जाता है। एक मुलायम वस्त्र को चार पर्त कर जमीन पर बिछालें, जिससे सिर को आराम मिले, घुटने के बल बैठकर दोनों हाथो को चारों अंगुलियों को परस्पर मिला लें, अंगूठा मुक्त रहे सर कपड़े पर टिका कर हाथ कोहनी सहित जमीन पर दृढ़ करें। तत् पश्चात्, पैरों को ऊपर ले जायें और सिर के बल सीधे खडे हों जायें जैसा चित्र में देख रहे हैं, शरीर का सारा भाग कोहनी पर पड़ेगा—ऊपर दोनों पैर व अंगूठे सटे रहें, श्वांस क्रिया सामान्य ढंग से रहें।।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।
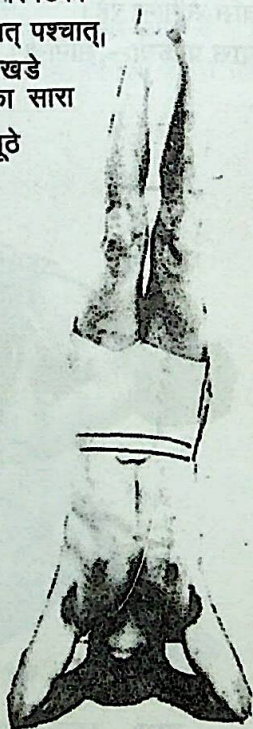
लाभः— सभी रोगो से मुक्ति मिलती है, स्त्रियों के गर्भाशय एवं जननेद्रिय सम्बन्धित रोग अच्छे हो जाते हैं, किन्तु रजस्वला एवं गर्भवती युवतियों को यह आसन नहीं करना चहिए।

निषेधः— उच्चरक्त चाप, सरदर्द व नेत्र रोग वाले व्यक्ति इसे न करें।

मुक्तासन

विधिः— पैर के दोनों पंजो को संयुक्त करें और एड़ियों को गुदा एवं अंडकोश के बीच में रखकर सारे शरीर का भार दें। चित्रवत् बैठ जायं। रीढ़ और गर्दन को सीध में रखते हुए दोनों हाथों को घुटनों के छोर पर इस प्रकार रखें ताकि सहजता से ध्यान मुद्रा बन सके। अर्थात् हाथ के दोनों अंगूठों को अनामिका अंगुली के जड़ को छूते हुए प्राणायाम की विधि से श्वांस क्रिया करें।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।
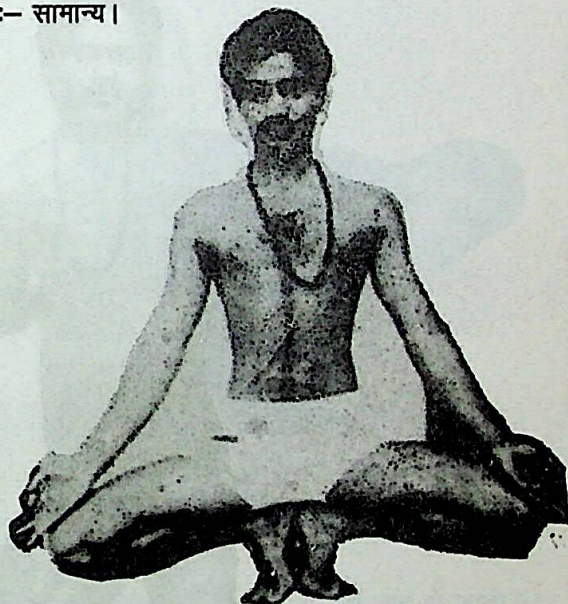
लाभः— इस आसन को करने से पैर पुष्ट होते हैं, कटि प्रदेश तथा इसके नीचे की हड्डियां मजबूत होती हैं। पाचन शक्ति पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

अष्टवक्र आसन

विधिः— सीधे खड़े होकर दक्षिणपाद को वाम–पार्श्व की ओर इस प्रकार ले जाएँ कि बाएँ घुटने पर दायां घुटना हो जाए। अब आधे बैठे होकर दाहिने हाथ को कोहनी घुटने पर टेककर हथेली कनपटी पर लगा लें। बाएं हाथ से दक्षिण पिंडली और पांव को पकड़ कर स्थित रहें। पैर बदल कर भी इसे किया जा सकता है।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।

लाभः— इसके निरन्तर अभ्यास से पैरों की नस नाड़ियाँ पुष्ट होती हैं तथा अण्ड–वृद्धि रुक जाती है।

पार्श्वकाक आसन

विधिः— सीधे खड़े होकर आगे की तरफ झुककर दोनों हथेलियां जमीन पर दृढ़ता से चिपका दें। अब दोनों पैर दक्षिण हाथ की ओर ले जाकर परस्पर लपेटकर घुटनों को हाथों के सहारे लाकर सारे शरीर का भार तोल दें, यथा शक्ति रुकें पुनः पैर बदल कर करें।

श्वांस प्रक्रियाः— शरीर जब मुद्रा में हो ता श्वांस रोकें रखें।

लाभः— रक्त संचार तीव्र होने से रक्त नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है। और बाहु तथा कटि भाग पुष्ट और लचकीले बनते हैं।

निषेधः— कमजोर ह्रदय वाले और कमर दर्द वाले व्यक्ति इसे न करें।

शवआसन

विधिः— समतल जमीन पर पीठ के बल लेट जायें। दोनों बाहें अगल–बगल रखकर हथेलियाँ ऊपर की ओर रहे। पैर के बीच में एक फीट का अन्तर हो, आँखे बन्दकर नाक से बहुत धीरे–धीरे सांस लें सारा शरीर ढीला छोड़ दें। किसी भी अंग से कोई हलचल न हो। शरीर के अंग में कोई तनाव नहीं, अनुभव करें शरीर शव के समान जमीन पर पड़ा है। शरीर इतना शून्य होना चाहिए कि कोई किसी भी अंग को अगर कुछ चुभाए या काटे तो इसका आभास न होने पाये, प्रत्येक योगासन के पहले और बाद में कम से कम पांच मिनट आराम करें।

श्वांस प्रक्रियाः— सामान्य।

लाभः— इस आसन से चिन्ता परेशानी दूर होती है। थकान दूर करने का इससे बड़ा कोई उपाय नहीं है। हृदय की बीमारी रक्तचाप मानसिक दुर्बलता ठीक कर शरीर और मन को ताजा रखता है।

सूर्यनमस्कार

सूर्यनमस्कार का वर्णन अधिकांश पुस्तकों में नहीं पाया जाता। इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यनमस्कार उन साधकों के लिए है जो योग में रुचि रखते हैं समपरभाव वस उसका अनुकरण नहीं कर पाते। अगर साधक सूर्य नमस्कार की बारहों मुद्रा का मन्त्रों के साथ अभ्यास करें तो मानसिक तथा शारीरिक विकारों से दूर रहेंगे।

मैं स्वयं मूलरूप से योगासनों का अभ्यासी हूँ अतः सूर्य नमस्कार के प्रतिपादन से मैंने जहाँ तक पाया है कि सैकड़ों योगासनों में से अपने अनुकूल आसनों का चुनाव करना कठिन होगा और सफलता के प्रति सन्देह बना रहता है। जबकि सूर्य नमस्कार के पूर्ण अभ्यास से विश्वास पूर्वक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य नमस्कार सहजता से सध जाता है और सीखने सिखाने में अधिक देर नहीं लगती।

सूर्य नमस्कार अकेले में ही एक सम्पूर्ण आसन है जिसके १२ भागों में शरीर के प्रत्येक अंग का प्रयोग होता है जिससे वे बलवान व पुष्ट हो जाते हैं।

सूर्य नमस्कार आसन के साथ ही एक उपासना पद्धति है जिसमें प्रजा और न्याय साथ–साथ चलता है।

विधि

(इस आसन में बारह आकृतियां होती हैं जो क्रमशः निम्न है)

१. प्रातः काल सूर्य की ओर मुख करके खड़े होकर प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ लें। अब पूरक द्वारा स्वांस को अन्दर करते हुए पैरों की ऐड़ियां और घुटने परस्पर मिलाकर खड़े रहें।

ॐ ह्रां मित्राय नमः...................... (सबका मित्र)

२. अब दोनों हाथों को पीछे की ओर झुकाते हुए पीठ लचकाएं। ध्यान रहे हाथ व पैर दोनों सीधे तने रहेंगे।

ॐ ह्रीं रवये नमः......................... (जिसके सभी प्रसंशक हैं)

३. इसके बाद आगे की तरफ झुकते हुए हथेलियों को दोनों पैरों के बाराबर इस प्रकार रखें कि हाथ और पैर के अंगूठे एक सीध में आ जायं। ध्यान रहे पैर के घुटने न मुड़ें और मस्तक घुटनों पर भली प्रकार लग जाय।
ॐ हूं सूर्याय नमः......................(प्रवर्तक, संचालक अथवा उत्तेजक)
४. अब आप पैर की पीछे ले जायं, छाती आगे आकाश की ओर देखें।
ॐ हैं भानवे नमः.................. (प्रकाश अथवा सौन्दर्य देने वाला)
५. तत्पश्चात् दायें पैर को दक्षिण पाद के बराबर ले जाकर रखें कि दोनों अंगूठे, ऐड़ियाँ और जानु परस्पर मिल जायं, ध्यार नहे ग्रीवा, सिर सीध में रहे और आकाश की ओर देखें।
ॐ हों सागाय नमः............. (इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला)
६. घुटने सहित वक्षस्थल और ललाट को भूमि से स्पर्श करें।
ॐ हः पूष्णे नमः............... (पालन पोषण करने वाला)
७. अब ग्रीवा और वक्षस्थल को ऊपर की ओर इतना उठायें की नाभि तक का क्षण भूमि पर से उठ जाएं (सर्वासन जैसे आकृति बन जाय)
ॐ ह्रां हिरण्यगर्भा नमः............... (वीर्य बल देने और जीवन को विकसित करने वाला)
८. अब धीरे-धीरे कमर को ऊपर उठाए हुए दोनों पैर की ऐड़ियां जमीन से लगाएं और कटि प्रदेश को पीछे की ओर ताने रहें।
ॐ ह्री मरीचये नमः.................. (रोगों का नाशक)
९. तत् पश्चात् बायें पैर को आगे बढ़ाकर दोनों हाथों के मध्य में रख दें और गर्दन आकाश की ओर कर पीठ और कमर झुकायें।
ॐ हूँ आदित्याय नमः............... (आकर्षित करने वाला)
१०. अब धीरे-धीरे दायें पैर को भी बाएं पैर के बाराबर रखें और कमर को ऊपर उठाकर मस्तक के दोनों घुटनों के मध्य से झुकाएं।
ॐ ह्रौं सावित्रे नमः................... (पैदा करने वाला)
११. दोनों हाथों को उठाते हुए सिर को ऊपर करते हुए सीधे खड़े होकर

पीछे की ओर झुका दें।

ॐ ह्रौं अर्काय नमः..................... (पूजा करने योग्य)

१२. शरीर को सीधा करते हुए हाथों को अलग-अलग करके सावधान स्थिति में हो जायं।

ॐ हः भास्कराय नमः .... (प्रकाश वाला)

स्वास प्रक्रियाः इसका सम्पूर्ण लाभ स्वास प्रक्रिया पर निर्धारित रहता है। पूरक-कुम्भक सहित १०-१५ बार अवश्य करें। अगर एक कुम्भक में ए सब न हो सके तो दो-तीन बार में करें अथवा प्राण खाते को स्वाभाविक रूप में रखते हुए करें।

लाभः इनं बारह आकृतियें से सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम हो जाता है। इस आसन के अभ्यास से शरीर के अंङ्ग प्रत्यङ्ग लचकीले सुडौल और पुष्ट हो जाते हैं दुर्बल देह वाले अभ्यास कर शरीर पुष्ट करते हैं।

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12
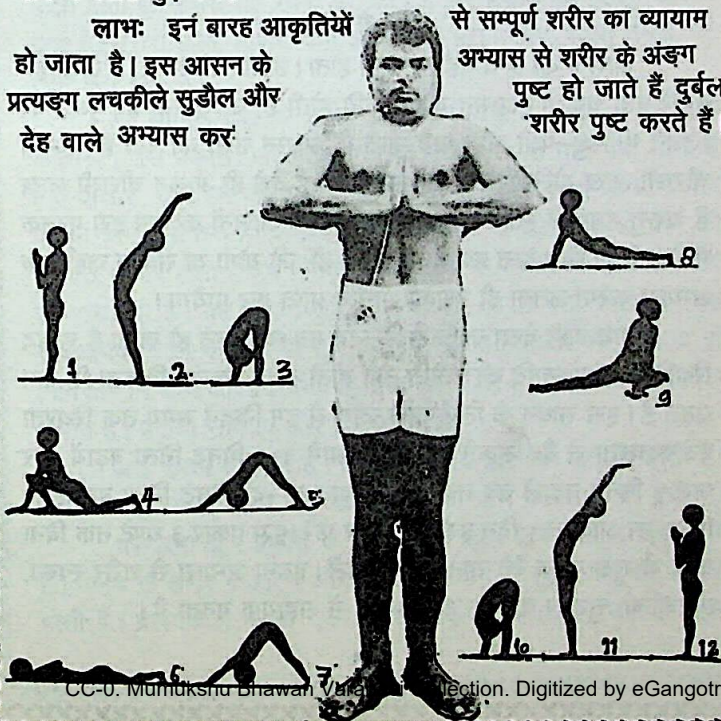
आसंन द्वारा जमीन छोड़ने की विधि

षटकर्म द्वारा शरीर शोधन कर लेते हैं, ततपश्चात एनिमा या बस्ती आदि से पेट की सफाई करके पद्मासन कर मूल और उड्डीयान बन्ध लगालेते हैं, फिर नीचे से पेट में वायु को भरना चाहिए। इस क्रिया को निरन्तर अभ्यास से कई महीने करते हैं, जब यह क्रिया पूर्ण तैयार हो जाती है तो स्वयमेव होने वाली आन्तरिक क्रिया द्वारा सूक्ष्म और शुद्ध शरीर वालों का आसन उठने लगता है, किन्तु आसन का उठाना केवल शरीरिक क्रिया हैं, इससें आध्यात्मिक सम्बन्ध लेश मात्र भी नहीं है, इसके प्रदर्शन में आध्यात्मिक हानि ही है।

*

आसनों का अन्त यहाँ पर नहीं होता। आसन तो अनन्त हैं जैसा हम पहले बता चुके हैं। आसन की आकृति होती है, जो अनन्त है। पृथ्वी पर जितने भी पशु–पक्षी जीव पाये जाते हैं, आसन उसी का रूप है। हमारी चौरासी लाख योनियाँ जैसी कि मानी गयी हैं वैसे ही आसन चौरासी लाख हैं, परन्तु हमारे में इतनी क्षमता नहीं कि सभी आसनों को हम इस पुस्तक में लेखनी या चित्र द्वारा प्रकट कर सकें। हाँ, जो योगी या साधक जहाँ तक अभ्यास करेगा उतना ही इसका आनन्द प्राप्त कर पायेगा।

प्रायः यही देखा जाता है कि जब मन ध्यानमग्न हो जाता है सुखद स्थिति से शीतोष्णादि की प्रतीति नहीं होती तथा संकल्प–विकल्प भी कम उठते हैं। इस साधन के लिए पहले जाँच लें हम कितने समय तक स्थिरता एवं स्वच्छता से बैठ सकते हैं। उसके आगे १–१ मिनट नित्य बढ़ायें और जब ५ मिनट बढ़ालें तब तक सप्ताह बाद दो–दो मिनट नित्य बढ़ायें १० मिनट पर आकर १५ दिन इसी को स्थिर करें। इस प्रकार ३ घण्टे तक बिना कष्ट के सुख पूर्वक बैठे रहने योग्य बनालें। इतना अभ्यास से शरीर स्वस्थ, लचकीला, सुडौल बनकर 'आसनजय' में सहायक बनता है।

*

प्राण एवं उसकी उत्पत्ति

प्राणाय नमो यस्य सर्व मिदं वशें जगत्।
यो भूतः सर्वेश्वरो, यष्मिन् सर्व प्रतिष्ठतम्।।

(अथर्व वेद)

हे प्राण तू जगदाधार है। तुझे हमारा नमस्कार। तूही सब लोकों लोकान्तरों का प्रकाशक, तूही समस्त सृष्टि का आधार है।

इस प्राण रूपी शक्ति का कोई रंग, स्वाद और आकार देखने में नहीं आता। मानव या जीव के चित्त में प्राणरूप प्रथम शक्ति उत्पन्न होती है, तत्पश्चात् ज्ञान की उत्पत्ति होती है, इसके बाद कर्म और बाद में बल का उदय होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, प्रकृति की पहली उत्पत्ति प्राण है। दूसरी ज्ञान, तीसरी कर्म और चौथी बल। सत्व, रजस् तमस्, जो सूक्ष्म रूप प्राण हैं।

सर्व व्यापक ब्रह्म के संयोग से कम्पन होता है, उसी को हम प्राण कहते हैं। उस प्रकृति जो चेतन ब्रह्म के संयोग से जो गति पैदा होती है वही प्राण है, यदि हम जब प्रकृति को चेतना से अलग करेंगे तो प्राण और प्रकृति दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। क्योंकि दोनों के संयोग से ही कर्म की उत्पत्ति सम्भव होती है हम मानवों ने इन दोनों के संयोग के कार्य को प्राण की संज्ञा दी है। यह सदा प्रकृति में गति का कारण बना रहता है। यह सर्वव्यापक चेतन का धर्म या गुण कदापि नहीं हों सकता क्योंकि ब्रह्म तो निर्विकार निष्क्रिय और निरवयव है, अवकाश रहित है। इसमें स्वयं गति का अभाव है। प्रकृति सावयव और विकारवान है।

अतः इसमें ही गति है। क्रिया कम एवं प्राण की उत्पत्ति होती हैं। चेतन के संयोग से गमन रूप क्रिया होने को प्राण की संज्ञा दी गयी है।

परमात्मा और प्रकृति के सहयोग से सूक्ष्म प्राणों की उत्पत्ति होती है। मानव के शरीर में आत्मा और चित्त के संयोग से सूक्ष्म प्राण की उत्पत्ति होती है। प्रलयकाल में जो सूक्ष्म गति या कम्पन होता है। उसे ही सूक्ष्म

प्राण समझें, क्योंकि प्रलयकाल के पश्चात् सर्व विनाश होने पर एक ही वस्तु शेष रह जाती है वह है शून्य या प्राण। यही शून्य प्राण भविष्य में परिणत होकर सर्व प्राणियों के प्राणं का उपादान कारण बन कर जीवन देता है। अतः हमें मानना होगा कि सर्व प्रथम प्रलय काल की अवस्था में प्राण का प्रादुर्भाव होता है। इसी के द्वारा सृष्टि के सृजन का सारा कार्य कलाप चलता है और यही आगे चलकर प्रकृति और परमात्मा के मध्य रह कर सारा कार्य कर पाता है।

मानव शरीर में स्थान भेद से प्राणों की दस विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति होती है और सब स्थान भेदानुकूल हो भिन्न भिन्न कार्य करता है। यैवष्तिक शरीरस्य प्राण में ही सम्पूर्ण जीवन का संचार करने की क्षमता है। शरीर के जिस किसी भाग में किसी प्रत्याघात विशेष से जब गति रुक जाती है तो वहां रुधिर और तेज का प्रवाह भी रुक जाता है। रुधिर जल का परिणाम विशेष होकर जीवन का सहायक बना हुआ है। यह शरीरगत प्राण बाह्य वायु के आहार से ही पुष्ट होकर जीवन का पोषक है। यदि इसे अपने उपादान कारण रूप वायु का निरन्तर आहार न मिले तो प्राणधारी का मरण हो जाता है। यदि हम अपने नाक अथवा मुख को बन्द कर लें तो शरीरस्थ प्राण तड़पने लगता है, और अपने उपादान कारण में मिलने के लिए बाहर गमन करने का यत्न करने लगता है। बाह्य वायु के साथ इसका सम्बन्ध नितान्त आवश्यक है। यह सम्बन्ध २४ घण्टे बना रहना चाहिए इसे वायु से शक्ति मिलना आवश्यक है। यह शरीर प्राण व्राह्य वायु की अपेक्षा रखता है। यह वायु की कार्यात्मक परिणति होती हुई विभिन्न अवस्थायें हैं अन्न, औषधि, वनस्पति आदि भी पृथ्वी तत्व की परिणत होती हुई अवस्थाओं के परिणाम हैं। इस प्रकार प्राण भी वायु की एक परिणत होती हुई अवस्था है।

शरीर में प्राण के बिना अकेला जीवात्मा कुछ नहीं कर सकेगा। अतः शरीर में प्राण की ही प्रधानता माननी होगी क्योंकि भूख प्यास जैसी शारीरिक क्रियायें भी तो प्राण के कारण ही उत्पन्न होती हैं। रक्त संचार, मल–मूत्र परित्याग तथा रज–वीर्य में गति प्राण से ही प्रसारित होती है। शरीर में बल,

शक्ति और पराक्रम प्राण से ही बना रहता है, क्योंकि माता के गर्भ में बालक की वृद्धि के विषय में विद्वानों का परस्पर मतभेद है। कुछ विद्वान तो आत्मा के प्रवेश के साथ ही कारण शरीर की वृद्धि मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि गर्भाधान के समय रज और वीर्य के संयोग के अन्तर्गत शिशु का शरीर एक कीटाणु से विकास भाव को प्राप्त होता है। शेष कीटाणु विनष्ट हो जाते हैं, एक कीटाणु से विकास हो अथवा समस्त द्रव्य कललभाव को प्राप्त होकर शरीर के निर्माण में उपादान कारण बनें परन्तु दोनों स्थितियों के अन्तगर्त शरीर के विकास से प्राण की प्रधानता माननी ही पड़ेगी। जन्म के उपरान्त प्रत्येक प्राणी का जीवनाधार प्राण ही है। उससे पूर्व भी बालक के गर्भाधान विकास का संप्रेरक प्राण को ही क्यों न मान लिया जाय? यदि गर्भावस्था में बालक की माता के प्राणों को उसके जीवन और विकास का साधन मानते हैं, तो गर्भयुक्त होने पर उसके जीवन का आधार कौन होगा? इससे यही सिद्ध होता है कि बालक के शरीर का अपना ही प्राण उसकी वृद्धि और विकास का हेतु होता है। गर्भस्थ बालक में उसके शरीर की वृद्धि का कारण यदि आत्मा को भी मान लिया जाए तो भी प्राण के बिना शरीर में गति नहीं हो सकेगी और फिर शरीरस्थ वायु की भी कुछ उपयोगिता नहीं रहेगी।

प्राण ही सर्वप्रथम जीवन का संचार करता है। इस प्राण रूपी जीवन शक्ति से ही मनुष्य के भोग प्रारम्भ होते हैं। और अपवर्ग तक चलते हैं, सर्वप्रथम चित्त में प्राण की उत्पत्ति हुई। इसे ही हम चित्त की सर्वप्रथम वृत्ति मानते हैं। सर्वप्रथम इसका ही स्फुरण चित्त में होता है। यही प्रथम कर्म का प्रादुर्भाव है। व्यष्टि चित्त का कारण समष्टि चित्त होता है और व्यष्टि प्राण का कारण समष्टि प्राण होता है, और उसका भी कारण समष्टि महत्तत्त्व है। फिर महत्तत्त्व का मूल कारण अन्त में प्रकृति ही होती है। प्रलय काल की अवस्था में जब यह कार्यात्मक जगत् परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने कारण में चला जाता है, उस स्थिति को हम प्रकृति की साम्यावस्था अथवा अन्तिम अवस्था कहते हैं और यही तत्ससम्बन्धी अन्तिम परिणाम होता है।

उस समय केवल समवाय प्रकृति और ब्रह्म ही शेष रह जाते हैं। सत्व, रज और तम भी विलींन भाव को प्राप्त हो जाते हैं, उस स्थिति में किसी प्रकार का कोई विशेष कार्य अथवा क्षोभ नहीं होता। प्रकृति के साथ–साथ केवल सर्वात्मा का सम्बन्ध बना रहता है। अतः उस साम्य भाव के अन्तर्गत प्रकृति के कार्य का नितान्त अभाव नहीं होता। सूक्ष्म कम्पन भाव बना ही रहता है।

शरीर का प्राणमय कोश के साथ सम्बन्ध :–

शरीर का प्राणमय कोश के साथ सम्बन्ध जैसा हमारे स्थूल देह के स्थूल भाग मांस, आदि स्थूल आहार के सेवन से पुष्टि एवं शक्ति पाकर कार्य कर रहे हैं उसी प्रकार श्वांस रूप वायु के आहार से देह व्यापी प्राणशक्ति शरीर में कार्य कर रही है। मुख से लेकर हृदयपर्यन्त मुख्य प्राण' नथुनों से प्रविष्ट होने वाले श्वांसरूप वायु का आहार पाकर फेफड़ों में रक्त शोषण और उष्मा–उपादान का कार्य करते हैं। उन प्राणी की क्रिया दर्शन अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा स्थूल देह को आधार बनाकर और ध्यानावस्थित होकर साक्षात् रूप से किया जाता है, जब देह से लगभग कुफ्फुसों में वह प्राणशक्ति बँधी या स्थित हो तभी इस क्रिया का दर्शन होता है। यहाँ पर उष्मा की अनुभूति फेफड़ेतत ' त्वचा' तथा रक्त शोधन की प्रक्रिया का दर्शन कराने से मलिन रक्त को लाल बना देने की क्रिया का दर्शन दिव्य नेत्र के द्वारा होता है। तांबे के तार में व्याप्त होकर जैसे विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाकर यत्र–तत्र लगे विभिन्न बल्बों मे अपना रूप प्रकाश के रूप में प्रकट करती है, इसी प्रकार आत्मिक केन्द्र से चली जीवनी रूपी यह सूक्ष्म प्राणशक्ति हृदय गत, आनन्दमय कोश में से होती हुई मस्तिष्क गत विज्ञानमय कोष तथा मनोमय कोश को परितृप्त करती हुई प्राणमय कोश के माध्यम से स्थूल देह में पहुँच कर अपना तेज प्रकट करती है। इस ज्योति या शक्ति का प्रकाश 'अन्नमय कोश' में वर्णित चक्रों में विशेष रूप से उद्‌भासित होता है। ये कोश भी क्रमशः स्थूलता को त्यागते हुए सूक्ष्म होते गये हैं, और ये सब परस्पर इतनी घनिष्टता से आबद्ध हैं कि जीवित–काल में ही इन्हें एक दूसरे के पृथक् नहीं किया जा सकता, किन्तु

इन सबकी शक्ति अपने–अपने केन्द्रों में एकत्रित की जा सकती है, जैसे सम्पूर्ण ज्ञान एवं क्रिया शक्ति का केन्द्र हृदय गत अन्तःकरण है।

ऐसे ही चित्त रूपी स्विच को बन्द कर देने पर ज्ञान और क्रिया का प्रवाह अवरुद्ध सा या मन्दतम पड़ जाता है। जब कि असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसी तरह बुद्धि के स्विंच को बन्द कर देने पर इन्द्रिय–विषयक आदान–प्रदान एवं प्राणमय कोश और अन्नमय कोश के कार्य शिथिल पड़ जाते हैं तथा निद्रा में स्थूल देह निश्चेष्ट होकर पड़ जाता है। किन्तु आन्तरिक भ्रमण अन्न पाचन आदि के एवं श्वांस प्रश्वास के कार्य तो होते रहते हैं। जाग्रत अवस्था में प्राण से मिला अन्तःकरण ही वृत्ति रूप से बहता हुआ देह के विभिन्न भागों में पहुँचकर ज्ञान और क्रिया का संचार रक्त प्रवाह के साथ–साथ करता है। इसी पारस्परिक घनिष्टता के कारण प्राण शैथिल्य से और मानसिक शिथिलता से प्राण में शिथिलता तो आ जाती है, किन्तु सर्वथा स्थूल प्राण का अवरोध हो जाए, यह बात साक्षात्कार एवं बुद्धि संगत नहीं है। अर्थात् जिस वेग में जाग्रत काल में प्राण मन आदि तत्व कार्य करते हैं, शारीरिक व्यापार करते और कराते हैं वह वेग ध्यान–समाधि–सुषुप्ति–निद्रा में शिथिल या सूक्ष्म पड़ जाता है।

जिस प्रकार प्रकृति नित्य है उसी प्रकार उसकी शक्ति प्राण भी नित्य है। कई स्थलों में हमने प्राण को कर्म या रजो गुण के रूप में कथन किया है परन्तु अधिक सूक्ष्म तथा गहन विचार और अनुभव करने पर यह प्रतीत हुआ है कि प्राण इन तीनों से बहुत सूक्ष्म और प्रकृति का सर्वप्रथम परिणाम यह विकार है। हम इसे प्रकृति की परिणत होती हुई सर्वप्रथम अवस्था कहेंगे। यह प्राण शक्ति तीनों गुणों से भिन्न माननी पड़ेगी, क्योंकि तीनों गुण तो साम्य भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म प्रकृति के रूप में हो गये हैं। जीव धारियों में गाढ़ निद्रा के समय सर्व इन्द्रियों और मन के व्यापार तथा प्रधान क्षोभ शान्त हो जाते हैं। केवल प्राण ही जागरूक रहता है, और समान रूपेण उसका व्यापार प्राणान्त तक होता रहता है। रक्त का संचार हृदय की नाड़ियों को धड़कन खाद्य और पेय पदार्थों का पाक, रसों का निर्माण

रज–वीर्य मल–मूत्र पाचन कर्म तथा अन्य निर्माणादि कार्य होते रहते हैं। इनमें प्राण ही प्रधान रूप में कार्य करता है। इसी प्रकार प्रकृति में भी प्राण द्वारा पाचन रूप कर्म नित्य नवीन सूक्ष्म परिवर्तन अथवा परिणाम होते रहते हैं। अन्त में वही जीर्ण–शीर्ण हो अपने कारण में पहुँचती हैं।

इस प्रकार से प्राण कर्म का अत्यन्त सूक्ष्म रूप ही है क्योंकि प्रकृति में सर्वप्रथम गतिका हेतु यही है। स्वंय कार्यरूप होने से अनित्य भी है। क्योंकि प्रकृति इसका उपादान कारण है। सूक्ष्म रूप से अविनासी होने के कारण यह नित्य भी है, जैसे पहिये की नाभी या धूरे में लगी तिली उसके आश्रित रहती है, उसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का क्रिया कलाप प्राण में आश्रित रहता है। सर्व कर्म साधक प्राण की प्रकृति का ही प्रथम गुण विशेष या धर्म विशेष अथवा परिणाम विशेष या कार्य विशेष मानना होगा। जैसे चेतन जीवात्मा के सन्निधान से शरीर में प्राण द्वारा कर्म या व्यापार होता है वैसे ही वैसे चेतन ब्रह्म से सन्निधान के प्रकृति में प्राण द्वारा गति प्रसाधित होती रहती है।

प्राणायाम

प्राणायाम क्या है—प्राणायाम शब्द प्राण—आयाम दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है प्राण पर नियमन। प्राण—नियमन का सामान्य अर्थ है—श्वांस प्रक्रिया पर नियन्त्रण। इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त प्राण का विशेष अर्थ उपयुक्त होता है, जिसका वर्णन "स्वामी विवेकानन्द" ने अपने राजयोग पुस्तक में किया है जहाँ प्राण को एक ऊर्जा के रूप में प्रतिपादित किया गया है। प्राण से ही हमारा सम्पूर्ण शरीर गति और जीवन प्राप्त करता है। प्राण सर्वप्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है। फुफ्फुस हृदय पर, हृदय रक्त पर और रक्त का प्रभाव मस्तिष्क पर और मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। प्राणायाम के माध्यम से हम इच्छा शक्ति को इतना समर्थ बनाते हैं कि वह वाह्य कार्यों से प्रभावित न होकर मन की चंचलता को दूर कर सके और आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सके।

प्राणायाम का वास्तविक स्वरूप श्वांस प्रश्वास का एक क्रम गति में प्रभावित करना स्वाभाविक गति में नियमित रूप से विराम पूर्वक आना जाना इसी गति में नियम और विस्तार के द्वारा असाधारण बनाकर स्वस्थतापूर्वक आयु को बढ़ाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय प्राणायाम है।

योग को समझने के लिए प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है। प्राणायाम स्वर-साधना की पहली सीढ़ी है। संध्या उपासना में भी प्राणायाम का विधान है, जैसा कि पहले बता चुके हैं कि श्वांस क्रिया को बार—बार बाहर निकालने, भीतर खींचने और रोकने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के अभ्यास से चित्त निर्मल होता है। काम वासना एवं तृष्णा दूर होती है। प्राणायाम चित्त की चंचलता दूर करता है। योग दर्शन के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास करने से विवेक के दिवाकर का उदय होता है जिससे अविद्या का अंधकार दूर होता है।

प्राणायाम करने वाले साधकों को चेतावनी

१. शीतकाल में शीतली, सीतकारी, चन्द्रभेदी प्राणायाम न करें परन्तु पित्त प्रधान व्यक्ति कर सकते हैं।

२. ग्रीष्म काल में भस्तिका, हृदय स्तम्भ, नाड़ी अवरोध, सूर्य भेदन आदि प्राणायाम न करें। कफ प्रधान, व्यक्ति हिमालय आदि स्थान पर कर सकते हैं।

३. बात प्रधान प्रकृति वाले शीत्कार, शीतली, प्लावनी आदि प्राणायाम न करें।

४. दुर्बल शरीर वाले, भस्तिका, हृदयस्तम्भ नाड़ी अवरोध सर्वांग स्तम्भ प्राणायाम न करें।

५. भोजन और प्राणायाम में चार घण्टे का अन्तर होना जरूरी है परन्तु भस्तिका प्राणायाम आप कर सकते हैं।

६. धूम, धूलि, दुर्गन्ध, सीलन युक्त वातावरण में आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास करने से लाभ के बजाय हानि हो सकती है।

७. अभ्यासी को सात्विक भोजन करना चाहिए, साथ में नशा एवं धूम वाली वस्तुओं का बिल्कुल त्याग करना चाहिए।

८. ज्वर पीड़ित रोगियों तथा गर्भवती नारियों को प्राणायाम करना सर्वथा वर्जित है।

९. प्राणायाम के अभ्यास के लिए सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन उपयोगी हैं।

१०. विशेष भार उठाने में जैसे—गाड़ी, मोटर, हाथी आदि को शक्ति योग द्वारा रोकना या अपने सीने पर से भार युक्त ट्रक—बस आदि उतारने के लिए पूरक सहित कुम्भक करें। साथ में, हृदय स्तम्भ नाड़ी अवरोध तथा सर्वांग स्तम्भ प्राणायाम करें।

प्राणायाम करने की विधिः— प्राणायाम पुस्तक मात्र से पढ़कर न करें क्योंकि यह कहावत है—देखा देखी करे योग छीजे काया बढ़े रोग"।

प्राणायाम किसी अनुभवी व निःस्वार्थी शिक्षक के समक्ष बैठकर स्वच्छ हवादार एकान्त स्थान पर ब्रह्म मुहूर्त में स्नानदि से निवृत्त होकर स्वच्छ एकान्त एवं शुद्ध आसन पर पूर्व दिशा की तरफ मुखकर पद्मासन या सुख आसन में बैठकर करना चाहिए।

जैसा कि हमने बताया है कि प्राणायाम की तीन अवस्थायें होती हैं। उसका अनुपात क्रमशः एक,चार,दो का होना चाहिए। १० सेकेण्ड पूरक करते हैं तो ४० सेकेण्ड कुम्भक करें और २० सेकेण्ड में रेचक करें। यह क्रम चार चार बार करना चाहिए।

प्राणायाम–प्राणायाम की तीन अवस्थायें होती हैं–

पूरक–स्वासखीचना, २. कुम्भक–रोकना, ३. रेचक–छोड़ना

पूरकः कुरुते दृष्टिं धातु साम्यं तथैव च।
कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षा विवर्धनम्।।
रेचको हरते पापं कुर्यात् योगपदं व्रजेत्।
पश्चात्सग्रामवत्तिष्ठे त्त्त्यवन्धं च कारयेत्।।

पूरक प्रणायाम शरीर में अमृत की वृष्टि करता है और धातुओं को सम बनाता है। कुम्भक शरीर को स्थिर करता है, इससे जीवों की रक्षा में

वृद्धि होती है। रेचक प्राणायाम पापों का हरण करता है। इन तीनों प्राणायामों को करने से योग पद की प्राप्ति होती है।

१. पूरक प्राणायाम–बाहर से अन्दर खीचने वाले स्वाभाविक कई सांसों को एक प्रश्वास बनाकर नथुने से धीरे–धीरे भीतर से आना पूरक प्राणायाम कहा जाता है।

२. कुम्भक प्राणायाम–जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, जब हम मात्रानुसार १० सेकेन्ड श्वांस खींचते हैं अर्थात् पूरक करते हैं तो हमें ४० सेकेन्ड तक कुम्भक करना चाहिए। कुम्भक का सही माने श्वांस प्रश्वांस को जहाँ का तहाँ रोक देना ही कुम्भक है। कुम्भक में प्राण को हम मणिपूरकचक्र (नाभि) पर ही रोकते हैं।

३. रेचक प्राणायाम–प्रत्येक स्वस्थ मानव एक मि० में प्रायः आठ बार श्वांस लेता है और आठ बार छोड़ता है कुल सोलह–सत्रह बार प्राण लेता है। इन्हीं प्राणों को कम करना जैसे आठ से घटाकर चार करना फिर यथा क्रम दो में नियमित करते हुए एक में लाना ही रेचक कहा जाता है।

रेचक का सामान्य अर्थ भीतर से निकलने वाला स्वाभाविक कई श्वासों को एक प्रश्वांस बनाकर नासापुटों से धीरे–धीरे बाहर निकालना ही है।

प्राणायाम के प्रकार–हठयोग के आचार्यों ने प्राणायाम के निम्न भेद बताये हैं–

सहितः सूर्यभेदश्च, उज्जायी, शीतली तथा
भस्त्रिका भ्रामरी, मूर्च्छा, केवली चाष्टकुम्भकः।।

१. सहित कुम्भक २. सूर्य भेदी ३. उज्जायी ४. शीतली ५. भस्त्रिका ५. भ्रामरी ७. मुर्च्छा तथा ८. केवली ये आठ प्रकार के कुम्भकप्राणायाम हैं–

१. सहित कुम्भक–अभ्यस्त आसन में बैठकर कमर और गर्दन आदि को सीधा रखकर दायें हाथ के अँगूठे से नासिका के दायें छिद्र को बन्दकर अनुपातानुसार पांच बार ॐ का मानसिक जाप करते हुए नथुने से

श्वांस को भरें फिर २० बार ॐ का मानसिक जाप कर कुम्भक करें। तत्–पश्चात् १० बार जाप करते हुए वाम नथुने को दबाकर दायें नासिका से रेचक करें। यह क्रिया दूसरे नथुने से भी करें। जब इसका पूर्ण अभ्यास हो जाय तो मंत्र के अनुपात संख्या से बढ़ाते जायं।

लाभ– मन और इन्द्रियाँ शांत होने लगती हैं। भूख प्यास पर अधिकार होने लगता है। शरीर में स्फूर्ति, हल्कापन मुख पर कान्ति आने लगती है।

२. सूर्य भेदी प्राणायाम– अपने अभ्यस्त आसन में पूर्ववत् बैठकर सूर्य स्वर (दायां नथुना) से धीरे–धीरे जाप करते हुए अनुपातानुसार श्वांस का पूरक करें। इसके बाद यथा शक्ति कुम्भक करें। पूरक इतना होना चाहिए कि नख से सिर तक प्राण वायु देह में भर जाय जब कुछ घबराहट सी प्रतीक होने लगे तब चन्द्रस्वर (वायां नथुना) से रेचक कर दें, सूर्य भेदी प्राणायाम केवल सूर्य नाड़ी से ही पूरक करें और चन्द्रनाड़ी से रेचक करें। इस प्राणायाम को प्रायः शीतकाल में ही किया जाता है।

लाभ–यह प्राणायाम पित्त को बढ़ाता है, कफ, वात को नष्ट करता है। पाचन शक्ति तीव्र होती है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में सहायक होता है।

३. उज्जायी प्राणायाम–पूर्ववत् अभ्यस्त आसन में बैठकर दोनों नासा पुटों से धीरे–धीरे पूरक करें। ध्यान से प्राण को केवल कण्ठ या हृदय तक ही भरें। साथ में जालन्धर बन्ध लगाकर बाद में यथा शक्ति कुम्भक करें और श्वांस प्राण को हृदय कण्ठ में और कण्ठ से मुख में लाते हुए दोनों नासिका से धीरे–धीरे बाहर निकाल दें।

लाभ– यह नाड़ियों का मल, वीर्य दोष, खांसी, प्लीहा, कण्ठ का बलगम आदि रोग दूर कर जठराग्नि तीव्र करता है।

४. भ्रामरी प्राणायाम– सुखासन या पद्मासन में बैठकर दायें हाथ से बायें नथुने को दबाकर पूरक करें। प्राण को यथा शक्ति कुम्भक कर जिह्वा द्वारा अन्दर से नासा छिद्र बन्दकर कण्ठ में भौरे जैसी मधुर सुरीली गुंजार

करके दक्षिण नासा से धीरे–धीरे रेचक करें। यह क्रिया कई बार करें।

लाभ– इस प्राणायाम से स्वर मधुर होता है, स्मरण शक्ति तेज होती है, ॐ की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगती है।

५. मूर्च्छा प्राणायाम– पूर्ववत् आसन में बैठकर दायें हाथ के अँगूठे से बायें हाथ को दबाकर बायें नथुने से श्वांस भरकर कुम्भक करें। साथ में जालन्धर लगाकर दृष्टि भ्रूमध्य में रहे। यथा शक्ति कुम्भक कर मुर्च्छा सा होने का प्रयत्न करें। अब दोनों नासा से धीरे–धीरे प्राण बाहर निकाल दें। यह क्रिया दोनों स्वरों से करें।

लाभ– मन का शान्त होना एवं मूर्च्छा आना ही इस प्राणायाम का लाभ है।

६. केवली प्राणायाम– पूर्ववत् आसन में बैठकर प्राण को जहाँ का तहाँ सहसा बन्द कर देना ही केवली प्राणायाम कहा जाता है। केवली प्राणायाम को कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है।

लाभ– दिव्यता का यह प्राणायाम उत्पादक है तथा ध्यान दृष्टि बढ़ाता है।

७. भस्त्रिका प्राणायाम– पूर्ववत् आसन में बैठकर दाहिने हाथ के मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को जोड़कर सीधा रखें ताकि अंगुली को मोड़कर बायें नथुने को बन्दकर कोहनी मोड़कर कन्धे के बाराबर करलें बायें हाथ को बायें पैर पर रखें अब बिना कुम्भक किये रेचक पूरक बलपूर्वक करें। यह प्राणायाम दोनों नासापुटों से बारी–बारी करें।

लाभ– यही एक ऐसा प्राणायाम है जिसे भोजन के उपरान्त भी कर सकते हैं इस प्राणायाम से भोजन ठीक ढंग से पचता है और पेट का निकलना बन्द कर कफ सुखाता है। यह प्राणायाम भी कुण्डलिनी–शक्ति को जागृत करने में विशेष सहयोग प्रदान करता है।

८. शीतली प्राणायाम– अभ्यस्त आसन में बैठकर जीभ को बाहर निकालकर कौवे के चोच के समान मोड़ लें। अब प्राण को धीरे–धीरे मुख द्वारा जीभ की बनी हुई नलिका से पूरक करें। यथा शक्ति कुम्भक करें। अब

दोनों नासा पुटों से एक साथ रेचक करें। यह क्रिया कई बार करें। यह प्राणायाम ग्रीष्म ऋतु में ही किया जाता है।

लाभ—यह प्राणायाम कफ, पित्त, अजीर्ण दूर कर के प्राण को शान्त करता हैं। प्यास को बुझाता है पित्त के विकार से उत्पन्न रोगों को दूर करता है।

प्राणायाम का यहाँ अन्त नहीं होता, प्राणायाम का ये तो पहला चरण रहा है। प्राणायाम के अनेक नाम हैं जिसका वर्णन न तो चित्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं न ही लेखनी द्वारा।

साधक को हम बता दें कि प्राणायाम के माध्यम से धीरे–धीरे नाड़ी स्तम्भ क्रिया और हृदय स्तम्भ क्रिया की जाती है। और भी शेष प्राणायाम जो बचते हैं उसका वर्णन निम्न है।

नाड़ी गति रोकहृदय
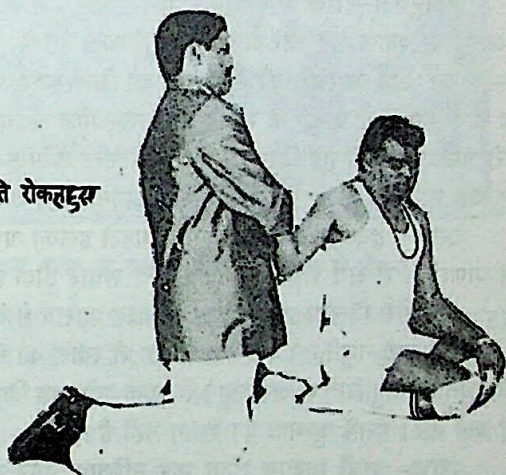
नाड़ी अवरोध प्राणायाम— पद्मासन या सुख आसन में बैठबर बायें नथुने से पूरक कर प्राण कौ मूलाधार तक यथा शक्ति रोकते हैं । मुट्ठी बांधकर घुटनों पर रखते हैं। अब श्वास को वक्षस्थल से भुजा की ओर

प्रस्सरित करें (संकल्प बल द्वारा) यह क्रिया तब तक करें जब तक बाहें फूलकर कड़ी एवं नाड़ी स्तम्भ न हो जायँ। जब तक नाड़ी पूर्ण स्तम्भ न हो जाय छोटे–छोटे पूरक करके कुम्भक करते जायँ। प्राण वायु बाहों में भरने से रक्त संचार बन्द हो जाता है, और अन्त में नाड़ी रुक जाती है। यह प्राणायाम खड़ा होकर भी किया जाता है प्रदर्शन मात्र के लिए। प्राण को बाँह में भरकर शरीर पूर्ववत् रखते हैं। कई बार रक्त प्रवाह कुछ देर तक इतना रूक जाता है कि बाहु नीला, काला सा पड़ जाता है। इसलिए इसका अभ्यास धीरे–धीरे कुछ दिनों करने से ही यह सिद्ध होता है।

लाभ– इसके अभ्यास से अंग प्रत्यंग सहित समस्त देह सुडौल पुष्ट और सुन्दर हो उठता है। प्राण पर अधिकार हो जाने से आप हाथी, मोटर आदि रोकने में समर्थ हो जायेंगे।

वक्षस्थल–रेचक प्राणायाम– पूर्ववत् आसन में बैठकर दोनों नथुनों से अन्दर की श्वास धीरे–धीरे करके बाहर निकाल देते हैं। इसके बाद बाह्य कुम्भक करें। अब वक्षस्थल की सभी नसों को सिकोड़कर अन्दर चिपका लें। अब दोनों हाथों को कन्धों के समीप ले जाकर मोड़ लें ताकि वक्षस्थल की सारी अस्थियां उभरी हुई दिखने लगें। यथा शक्ति कुम्भक करें। जब फेफड़े संकुचित हो जायं तो प्राण को धीरे–धीरे अपना कार्य करने दें।

लाभ– हृदय स्तम्भ प्राणायाम से पहले इसका अभ्यास जरूरी है। इस प्राणायाम से क्षय रोग दूर होकर रक्त संचार ठीक होने लगता है।

अनुलोम विलोम प्राणायाम– अभ्यस्त आसन में बैठकर दायें हाथ के अंगूठे से बायें नथुने को बन्दकर शीघ्रता से स्वास को भीतर भरलें। अब बायें नथुने को अंगुलियों से दायें नथुने से रेचक करें। यह क्रिया जल्दी–जल्दी कई बार करें। इसमें कुम्भक का स्थान नहीं है।

लाभ– सर्दी जुकाम ठीक कर मस्तिष्क और वच्छस्थल हल्के रखता है।

चन्द्रभेदन प्राणायाम–अभ्यस्त आसन में बैठकर दायें हाथ के अंगूठे से दायाँ नथुना दबाकर पूरक करें। वच्छस्थल एवं उदर से खूब वायु

भरें। यथा शक्ति कुम्भक कर बायें नथुने से रेचक करें। इसी क्रम को कई बार करते रहें।

लाभ— यह प्राणायाम पित्त को नष्ट करता है, कफ और बात को बढ़ता है, पाचन शक्ति तीव्र होती है।

एकाग्ङ्स्तम्भ प्राणायाम— अब किसी भी आसन में खड़े होकर या बैठकर प्राण को शरीर के अन्दर भरते हैं। तत्पश्चात् उस प्राण को संकल्प
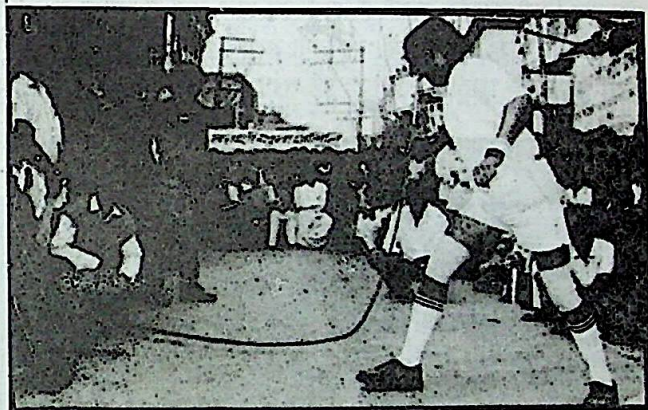
पैनह का प्वाइन्ट आंख पर रखकर मोटा राड आंख से मोड़ना ।

बल द्वारा कहीं भी स्थान विशेष पर ले जाते हैं। चाहे वह हाथ हो पैर हो बाल हो या शरीर की कोई भी इन्द्रियाँ या अंग हों। जैसा कि शरीर का सबसे कोमल एवं महत्वपूर्ण अंग हमारा आप का है। हम उसी जगह अपने प्राण को एकत्र करते हैं। अब आप उसमें नुकीली से भी नुकीली धार को चुभाने का यत्न करेंगें तो वह नहीं चुभेगा। जैसा कि आप चित्र में देख रहे हैं। चार सूत मोटा छड़ एवं उसके अग्रभाग पर लगे भाले को नोक जो कि मात्र आंख पर है उसे आखों पर रखकर टेड़ा कर देना है। यह क्रिया तभी सिद्ध होगी जब आप का प्राण के माध्यम से अंग–प्रत्यर्ग दृढ़ एवं पुष्ट न हो जाय।

लाभ-- इसके अभ्यास से प्राण पर अधिकार हो जाने से और भी साहसी कार्य हाथी, मोटर आदि रोकने में समर्थ हो जायेंगे और समस्त देह सुडौल और पुष्ट हो जाता है।

हृदय स्तम्भन प्राणायाम– रीढ़ की हड्डी मेरुदण्ड तथा गर्दन को सीधा रखते हुए सुख आसन में बैठ जायें। दाहिने नाक को बायें हाथ की तर्जनी से दबाकर बायीं नासिका से साँस को भीतर भरा जाय। अब सांस को रोककर जिसे कुम्भक कहते हैं, अन्तर्गत प्राण वायु के दबाव से हृदय को स्तम्भित करने का प्रयत्न करें। यह तभी सम्भव होगा जब प्राण को इतना भर लिया जाय कि छाती बीन बाजा की तरह प्राण वायु से फूलकर हृदय
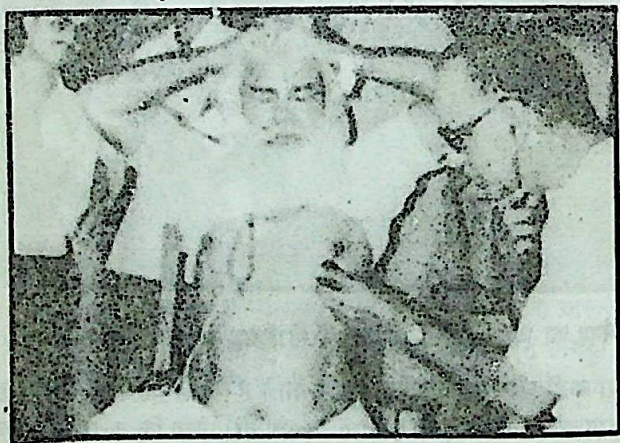
को स्तब्ध करने लगे। फिर संकल्प बल से प्राण के दबाव को बढ़ाकर हृदय रोकने का अभ्यास करें। ध्यान रहे प्राण गले के द्वारा मस्तिष्क की ओर न बढ़े अन्यथा बेहोश होने की आशंका रहेगी। सावधानी पूर्वक प्राण को फुफ्फुसों में ही रखने का प्रयत्न करें। इस क्रिया के अभ्यास से हृदय की गति बन्द होने लगती है। और अन्त में यत्न पूर्वक देखने पर भी हृदय की गति प्रतीत नहीं होती। यदि अभ्यास काल में चक्कर या मूर्छा आवे तो सांस

को वायीं नासिका से छोड़ दें। यदि कभी किसी साधक को असावधानी से मूर्छा आ जाय तो शिक्षक आदि को उचित है कि वे साधक के कानों को मलकर हिलायें, डुलायें मुख पर ठंडा जल से धोने का प्रयास करें। यदि इतना प्रयत्न करने पर भी होश न आवे तो कान में उच्चस्वर से बोलें।

साधक हृदय गति को एकाएक न रोके। ५–५ सेकेण्ड प्रतिदिन बढ़ाने की कोशिश करें। इसी क्रिया के माध्यम से मानव या साधक जमीन से ऊपर उठता है। साथ–साथ साधक को यह भी ध्यान देना है कि ऐसी जगह बैठे कि सिर से ऊपर केवल एक या दो सूत ही जगह हो। यह सावधानी इसलिए आवश्यक है क्योंकि अधिक खाली होने से सिर में घाव होने की सम्भावना हो सकती है। इस क्रिया को गुरुजन अथवा सहयोगी के सान्निध्य में करें।
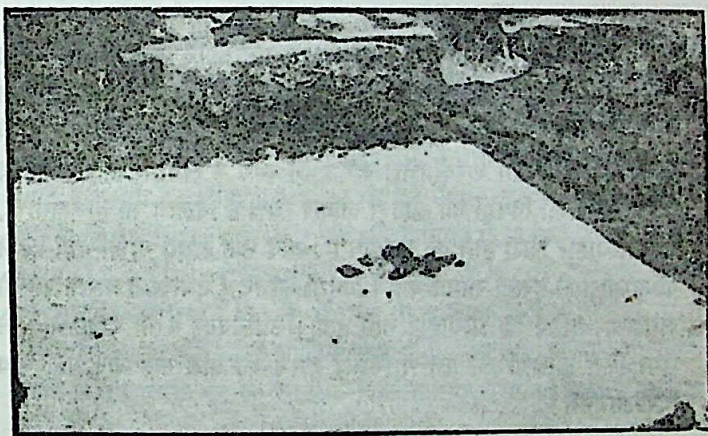
जमीन के अन्दर सात दिन तक समाधि क्रिया में योगीराज

लाभ– इस प्राणायाम को सावधानी पूर्वक करने से हृदय की गति रुक जाती है। यह जड़ समाधि कहलाती है। इसमें किसी वस्तु का आभास

नहीं रहता है। वक्षस्थल बलवान होता है। रुधिर की नालियाँ रुक जाती हैं। शरीर के सभी अंग निर्जीव से डाक्टरों को आभास होता है। यह डाक्टरों को आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, जिससे वह निर्जीव शरीर घोषित कर देता है।

प्रत्याहार

"बहिरिद्रियाणां स्व विषयौमुख्येन अवस्थानं प्रत्याहारः" ।।

बाहरी स्थूल इन्द्रियों को विषयों से विमुख करके स्थिर करना प्रत्याहार है।

स्व विश्रया सम्प्रेयागे चित्तस्वरूपानुकार,
इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।

प्राणायाम का अभ्यास करते–करते मन आदि शुद्ध हो जाता है। इसके बाद इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति को सब ओर से समेट कर मन में विलीन करने के अभ्यास का नाम 'प्रत्याहार' है। जब साधना काल में साधक इन्द्रियों के विषयों का त्याग करके चित्त को अपने ध्यये में लगाता है, उस समय जो इन्द्रियों का विषयों की ओर न जाकर चित्त में विलीन सा हो जाना है, यही प्रत्याहार सिद्ध होने की पहचान है। यदि उस समय भी इन्द्रियाँ पहले के अभ्यास से इसके सामने बाह्य विषयों का चित्र उपस्थित करती रहें तो समझना चाहिए कि प्रत्याहार नहीं हुआ। उपनिषदों में भी वाक् शब्द से उपत्तक्षित इन्द्रियों को मन में निरुद्ध करने की बात कह कर यही भाव दिखलाया है।

अथातः सप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारं महामुने।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।। १।।
वलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।
प्रत्हाहारो भवेदेष ब्रह्मविद्भ पुरादितः।। २।।

(जवाल दर्शणापनिषद)

स्वभावतः इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों को ग्रहण करती रहती हैं। उसको बल पूर्वक विषयों से रोक लेना प्रतहार कहलाता है। बाह्य जगत् में जो कुछ दिखता है उस सबको ब्रह्मरूप समझकर इन्द्रियों को शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्धादि अपने विषयों से रोक लेने को ज्ञानियों ने प्रत्याहार कहा है।

प्रत्याहार का सामान्य अर्थ है कि इन्द्रियों पर अधिकार या विजय पा लेना। विषय के उपस्थित होने पर भी मन की बिना प्रेरणा के इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण ही न करें प्रत्याहार दशा में मन तो बाह्य विषयों से विमुख विरक्त सा होकर अन्तरमुख हो जाता है, और इन्द्रियाँ भी बाह्य विषयों की ओर न जाकर शान्त हो जाती हैं। जैसे मधुकर रानी के अनुकूल अन्य मक्षिकायें दौड़ती हैं, वैसे ही प्रत्याहार से मन के अनुकूल हुई सी इन्द्रियाँ भी बाह्य विषयों से शान्त हो जाती हैं।

प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रिय तथा मन का विषयों के ग्रहण करने में प्रवृत्त न होकर अपनी स्वाभाविक स्थिति में स्थिर हो जाना ही है। इस प्रत्याहार दशा में वे ऐसे ही दीखते हैं जैसे निर्वात स्थान में रश्मिविहीन अंगार पड़ा हो, अथवा तन्द्रा–मग्न मनुष्य अपने नेत्रों को कभी खोलता और कभी मूँद लेता है। किंवा एक स्थान पर बैठे जुगनू की पुच्छ कभी खोलती और कभी बुझती हो। इसी भांति इन इन्द्रियादिकों के प्रकाशों में प्रदीप्त रूप स्वाभाविक परिणाम होते हुए भी सब स्थिर से दीखते हैं। यदि इनमें स्वाभाविक परिणाम न होते तो ये दीख भी न सकते। हाँ इसमें इस समय विषय सम्पर्क से होने वाली चपलता नहीं होती। इन बाह्य प्रकाशों में जलने बुझने से दृष्टांत से मन की संकल्प–विंकल्पात्मक दशा को दर्शाना अभीष्ट है।

जब हम अपने संकल्प विकल्प का अभाव करते हुए एकाग्रता में जाते हैं तब एकाग्रता से पूर्वावस्था में इन्द्रियाँ मन बुद्धि ये तीनों ही शान्त दीखते हैं। जैसे निर्वात स्थान में दीपक की शिखा शान्त स्थिर होती है किन्तु उस दीप शिखा के समीप देखा जाय तो उसमें प्रकाश के कणों में हो रही

गति के रूप में ज्वलन रूप क्रिया स्पष्ट ही दीखती है इसी प्रकार शान्त दिखने वाले मन बुद्धि और इन्द्रियों के क्रियाशील न होने पर भी इनमें हो रहा स्वाभाविक परिवर्तन अब भी दिखता है। विषयों से निवृत्त होकर अन्तर्मुख मनबुद्धि और इन्द्रियों की क्या स्थिति होती है इसे ध्यानस्थ होकर देखने में जो दर्शन होता वह प्रथम ध्यानस्थ दशामें इनकी स्थिति का निर्देशक तो चित्त होता है और अहंवृति करण बनी होती है। मन की स्वाभाविक प्रकाशशीलता से बने रहते हुए भी इस समय इन्द्रियाँ मन ओर बुद्धि किसी में भी ऐसा क्षोभ नहीं होता जैसा विषय से प्रतिबिम्ब होते समय होता है। जो क्षोभ है भी इसलिये योगी अपनी प्रज्ञाऽलोक दृष्टि से किसी दूसरे अभ्यासी के शरीर में प्रविष्ट होकर इन दोनों मण्डलों अथवा कोशों की आन्तरिक स्थिति का बोध कर सकता है.। 'स्व' से 'स्व' का बोध होना कठिन है अतः अपनी स्वाभाविक परिणामशीलता के कारण चित्त एवं पदार्थ दोनों ही के क्रियाशील बने रहने से अतीन्द्रिय–विज्ञान प्राप्ति के लिए सर्वत्र प्रज्ञाऽऽ लोक की आवश्यकता रहती है।

अपने–अपने विषयों के साथ सम्पर्क न करके इन्द्रियों और बुद्धि का स्वरूप का अनुकरण सा करना प्रत्याहार है। इस प्रकार इन्द्रियों का आहार रूप अपने–अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न जोड़कर अपने–अपने ज्ञान न ग्रहण करना तथा अवपने कर्मेन्द्रियों को अपने कर्म व्यापार से शान्त बने मन बुद्धि के समान शान्त हो जाना ही प्रत्याहार का स्वरूप है।

जब बुद्धि का बाह्य विषयों के साथ उपराग होता है तब ये इन्द्रियाँ भी विषयों को ग्रहण करती हैं। बुद्धि में उपरत हो जाने पर ये इन्द्रियाँ भी उपराम रहित शान्त बुद्धि का अनुकरण करने लगती हैं अर्थात् शान्त हो जाती हैं और बुद्धि में भी कोई चेष्टा नहीं रह जाती। यह अवस्था सर्वोत्तम कही गयी है। ऐसी अवस्था का नाम ही योग कहा जाता है। ऐसी स्थिति में प्राप्त हुआ योगी जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है, इस प्रकार प्रत्याहार योग साधना का प्रथम द्वार है।

लाभ– प्रत्याहार से इन्द्रियों पर नियन्त्रण, मन की निर्मलता, तप

बुद्धि, आरोग्यता तथा चित्त की योग्यता में वृद्धि होती है। योग का यह अत्यधिक कठिन अंग है। यहीं से वास्तविक योग आरम्भ होता है।

ततः परमावश्य तेन्द्रियाणाम्।।

प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर योगी की इन्द्रियाँ उसके सर्वथा वश में हो जाती हैं। उनकी स्वतन्त्रता का सर्वथा अभाव हो जाता है। प्रत्याहार की सिद्धि हो जाने पर इन्द्रिय विजय के लिये अन्य साधन की आवश्यकता नहीं रहती।

धारणा

"देशबन्ध चित्तस्य धारणा"।।

नाभिचक्र, हृदयस्थल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य–चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी पदार्थ बाहर के देश हैं। उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्तियों को लगाने का नाम धारणा है।

धारणा अन्तः तथा बाह्य दो प्रकार की होती है, और बाह्य धारणा के भी मुख्य ५ स्वरूप हैं।

१. पार्थिव धारणा– जैसे ॐ अक्षर, काला बिन्दु, पुष्प अथवा किसी महापुरुष का चित्र एवं स्वर्ण, रजत, पाषाण आदि की बनी देव मूर्ति को लक्ष्य करके मन को स्थिर करना।

२. जलीय धारणा– जैसे कि नदी–तीर पर, सरोवर कूल पर, एवं समुद्र तट पर बैठकर जल को निरन्तर स्थिर दृष्टि से देखते रहना।

३. आग्नेय धारणा– जैसे दीपक या मोमबत्ती की शिखा लघु प्रकाश वाले हरे–नीले से बल्ब या होम कुण्ड की अग्नि आदि तेजस पदार्थों पर दृष्टि स्थिर करना।

४. वायवीय धारणा– जैसे किसी वस्तु के निरन्तर स्पर्श को या

श्वास–प्रश्वास की गति को या वायु और प्राण के या शीतोष्ण के निरन्तर स्पर्श का अनुभव करते हुए मन को स्थिर कर देना।

५. शाब्दिक धारणा– जैसे उच्च या उपांशु जप के शब्द पर, गंगा आदि के कल–कल निनाद पर अथवा भ्राभरी प्राणायाम के शब्द गुंजार या अनहद पर मन को बाँधने या स्थिर कर देने से धारणा बलवती होती हैं। आगे ध्यान प्रवेश करने के लिए धारणा को बलवत्ती करना अवश्यक है।

अर्थदानीं प्रवक्ष्यामि धारणां पञ्चत्वतः।
समाहित सनास्वच्च श्रुणु गार्गि तपोधने।।

यमादि गुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि।
धारणे त्युच्यते सदभिः शास्त्रतात्पर्य वेदिभिः।।
(याज्ञवल्क्य संहिता)

योगी याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा कि हे तपोधने ! अब पंच विध धारण कहता हूँ। समाहित चित्त होकर सुनो–यम, निमय, आसन प्राणायामादि साधना से युक्त जिस साधक ने आत्म में अपने मन की स्थिति दृढ़ कर ली है, शास्त्रों का तात्पर्य जानने वाले महात्माओं ने उस स्थिति को ही धारणा कहा है। यही धारणा योगशास्त्र में नाना प्रकार से कही गई है। उनमें पंच महाभूतों के तत्व धारणा ही प्रधान हैं और जितने भी प्रकार की धारणायें हैं उन सबका फल साधक के अपने अभ्यास पर निर्भर करता है।

ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।।

जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाय, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना, अर्थात् केवल ध्येय मात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रभाव चलाना, उसके बीच में दूसरी वृत्तिका न उठाना 'ध्यान' है।

ध्येय सक्त मनोयस्य ध्येय मेवानुपश्यति।
नान्यं पदार्थ जानाति ध्यानम तत्प्रकीर्त्तितम्।।
न ध्यान ध्यान मित्याहुर्ध्यानं निर्विषयं मनः।
तस्य ध्यानप्रसादेन सौख्यं मोक्ष न संशयः।।
ध्यानेन लभते मोक्षं मोक्षेण लभते सुखम्।
सुखेनानन्दवृद्धिस्यादानन्द्रो ब्रह्मविग्रहः।।

(ज्ञानं संकलिनी तंत्र)

ध्यान का वर्णन योगशास्त्र में नाना प्रकार से किया जाता है। जैसे साकार निराकार 'यथाभिमतध्यानाद्रा' साधक अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे ध्यान करे। "तत्र प्रत्यैकताना ध्यानम्" ध्येय में एकतानता, तन्मयता प्राप्त हो वही ध्यान कहा जाता है। ध्येय में लगा हुआ मन उस ध्येय मात्र में अविच्छिन्न भाव से भावित होकर लगा रहे, एवं तन्मय हो जाय और अन्य किसी पवार्थ विषय को उस समय न जाने उसको ध्यान कहते हैं। बाकी जो ध्यान कहे जाते हैं वे ध्यान नहीं हैं। ध्यान तो मन को निर्विषय करने का नाम है। इस ध्यान के प्रसाद से परम सुख होता है, और मोक्ष भी प्राप्त होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ध्यान से ही मोक्ष मिलता है। मोक्ष से ही परम सुख होता है। सुख से ही आनन्द की वृद्धि होती है। आनन्द ही ब्रह्म का रूप है।

धारणा की उच्च एवं अन्तिम अवस्था को ध्यान कहा जाता है। ध्यान की अवस्था में चेतना अपने विषय में पूर्ण स्थिर होती है। इसमें लक्ष्य का अविराम एवं अबाध चिन्तन होता है। इसकी अन्तिम अवस्था में प्रायः निर्विषय जैसा होने लगता है।

धारणा को दृढ़ करते–करते कुछ काल के पीछे एक ऐसी भी अवस्था धारणा काल में स्वतः आ जाया करती है जब साधक को लक्षित वस्तु के अतिरिक्त देश–काल आदि का बोध नहीं होता। यही ध्यान का स्वरूप है। इसी अवस्था को ध्यान कहते हैं।

समाधि

"तदवार्यमात्रमिभसिंस्वरुप शून्य मिव समाधिः"।।

ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है और उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है एवं उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का ही नाम समाधि हो जाता है। यह लक्षण समापत्ति के नाम से पहले पाद में किया जाता है।

विषयों के चिन्तन से मुक्त होकर आत्मा जब परमात्मा में रमण करने लगे तो वही अवस्था समाधि कहलाती है।

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः।
तथात्ममसौरभ्यं समाधिरभिधीयते।।
यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते।
तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते।।
तत्सम च द्वयौरैभ्य जीवात्म परमात्मनोः।
प्रनष्टसर्वसंकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते।।

योगशास्त्र में समाधि का वर्णन नाना प्रकार से किया गया है जैसे–सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि, सजीव समाधि, निर्जीव समाधि, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात इत्यादि। योगी को समाधि हो जाने से ही सब साधनायें समाप्त हो जाती हैं। जैसे नमक जल में मिलाने से जल रूप हो जाता है, वैसे ही आत्म तत्व में मन संलग्न होने से आत्मरूप हो जाता है। उसको समाधि कहते हैं। जब प्राण–प्रवाह, श्वास–प्रश्वास की क्रिया बन्द हो जाती है तो मन निरुद्ध हो जाता है, और प्राण सुषम्ना विवर–स्थित ब्रह्मरन्ध्र में लय हो जाता है, तब समाधि होती है और सर्व प्रकार के संकल्पों का विनाश हो जाता है, तब उनको समाधि कहते हैं।

समाधि क्या है?– जैसा के आपको मैं बता चुका हूँ कि विषयों के चिन्तन से मुक्त होकर आत्मा जब परमात्मा में रमण करने लगे यही समाधि कहलाती है। समाधिस्थ चित्त तथा बुद्धित्व की एक ऐसी सूक्ष्म

अवस्था है जो पदार्थों के तत्वों का विश्लेषण करके पदार्थ के सूक्ष्म स्वरूप का साक्षात्कार करा देती है। समाधि द्वारा प्राप्त विशेष ज्ञान अतीन्द्रिय पदार्थों के साक्षात्कार के द्वारा मोक्ष द्वार पर लाकर खड़ा कर देता है।

मनुष्य में तम, रज और सत्व ये तीनों गुण पाये जाते हैं। इसलिए समाधि के तीन रूप भी पाये जाते हैं।

१. तम प्रधान समाधि– इसमें तम की प्रधानता होती है। तामसिक समाधि के पीछे व्युत्थान होने पर शून्य के अतिरिक्त अन्य किसी भाव के ज्ञान की स्मृति नहीं होती। कई साधक भ्रम में इसी शून्य समाधि को निर्जीव या निर्विकल्प समाधि समझ लेने का प्रयत्न कर बैठते हैं। इस समय चित्त की स्थिति कई घण्टे या अभ्यास सामर्थ्य के अनुसार जितने काल तक भी रहेगी उसमें शून्य भाव का ही अवलम्बन होगा।

अन्य किसी प्रकार का ज्ञान–विज्ञान तथा सम्वेदन नहीं होगा। जैसा कि तामस निद्रा में होता है। जब चित्त या बुद्धि को समाहित ही करना है तो किसी पदार्थ या गुण में इन्हें समाहित किया जाता है, और संकल्प बल से बुद्धि और चित्त को रज, तम के प्रभाव से निकाल कर किसी सात्विक अवस्था में से कोई भी यथेष्ट अवस्था बनाई जा सकती है।

२. रज प्रधान समाधि– रज प्रधान समाधि में सर्वप्रथम समाधि सविकल्प है। किसी स्थूल पदार्थ का पूर्वापर रूप से साक्षात्कार करने के लिए अभ्यासी जब बुद्धि को समाहित करता है, तब सर्वप्रथम उस पदार्थ के स्थूल अंग, रंग रूप नाम आदि सन्मुख आते हैं। फिर इसके विषय में पारस्परिक कार्य शैली में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ततपश्चात् इन सबके कार्यक्रम का साक्षात् दर्शन होता है।

३. सत्त्वप्रधान समाधि– इसमें सत्व के प्रकाशित वस्तु मात्र ही ध्येयाकार वृत्ति से हो इस रूप का बोध होता है। इसमें रज–तम सब दबे पड़े रहते हैं। चित्त में इसका रूप धारा प्रवाह सा बहता रहता है। सत्व का इतना दबाव होने से इसमें तर्क–वितर्क उठने ही नहीं देता। इसमें इतना ही ज्ञान होता है कि अन्य कोई विकल्प उठता ही नहीं।

उपनिषद् में उक्त समाधि के बारे में कहते हैं। इससे मिलती हुई अस्मितानुगत समाधि है। इसमें 'अहं' 'अस्मि' मात्र का बोध ही होता है।

समाधि ध्यान की परिपूर्ण अवस्था है और योग का अन्तिम अंग। इसमें चित्त की वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है। ध्यान की अवस्था में ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान की त्रिपुटी का भेदाभास रहता है तथा तीनों की पृथक् चेतना भी वर्तमान रहती है किन्तु समाधि में कोई भेद नहीं रहता। इसमें ध्यान की प्रक्रिया की चेतना भी नहीं रहती। केवल ध्येय विषय ही शेष रह जाता है। संप्रज्ञात समाधि सविकल्प होती है। इसमें अवलम्बन की आवश्यकता रहती है और प्रज्ञा के संस्कार भी वर्तमान रहते हैं। यह चित्त की एकाग्र दशा में होती है। संप्रज्ञात समाधि चार प्रकार की होती है।

१. सवितर्क– समाधि में योगी को स्थूल विषयों का साक्षात्कार होता हैं।

२. सविचार समाधि– इसमें साधक स्थूल भूतों से अपना ध्यान हटाकर इनके कारण पंचभूत तन्मात्रादि सूक्ष्म विषयों का ध्यान रहता है।

३. सानन्द समाधि– इस समाधि में योगी में सत्त्व की प्रधानता होने से आनन्द की तीव्र अनुभूति होती है।

४.सास्मिता समाधि– इसमें अहंकारोपाधिक पुरुष की भावना होती है।

इन चारों भेदों में जीव का ध्यान स्थूल विषयों से क्रमशः सूक्ष्म विषय की ओर जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त के समस्त आलम्बन और वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। इसे निर्विकल्प समाधि भी कहा जाता है। इसमें समस्त भेदों का नाश हो जाता है। अन्त में जब चित्त का भी विनाश हो जाता है तब धर्ममेध समाधि होती है। इसी को आत्मा का पूर्ण साक्षात्कार कहते हैं। यह निर्जीव समाधि भी कही ज.ती है। इसमें चित्त की निरुद्ध दशा मानी जाती है। भर्जित बीज में अंकुर के समान निरुद्ध दशा में चित्त भी वृत्तियों को जन्म देने में समर्थ नहीं रहता।

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार: प्रकीर्तित:।
प्रत्याहारदिषट्केन जायते धारणा शुभा।।
धारणाद्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदे:।
ध्यानं द्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।।
यत्समाधौ परज्योतिरन्तं विश्ववृतो मुखम्।
तस्मिन्दृष्टे क्रिया कर्म यातायातोन विद्यते।।

योग शास्त्र में योग के प्रत्येक अंग साधन का फल कहा गया है। बारह घण्टे आसन हो तो एक घण्टे कुम्भक प्राणायाम का फल होता है और बारह घण्टे कुम्भक प्राणायाम हो तो एक घण्टे का प्रत्याहार का फल होता है। इसी प्रकार जो साधक बारह घण्टे का प्रत्याहार कर सके उसको एक घण्टे धारणा का फल होगा और जो बारह घण्टे धारणा कर सके उसको एक घण्टे के समय के ध्यान का फल होगा। ऐसा योग विशारदों ने कहा है। बारह घण्टे ध्यान कर सकने से एक घण्टे की समाधि में परम ज्योति स्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार होता है, जिसके फलस्वरूप सभी प्रकार के क्रिया कर्म निवृत्त हो जाते हैं तथा जन्म–मरण से छूट जाते हैं।

षट्कर्मणा शोधनञ्च आसनेन भवेद् दृढम् ।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ।।
प्राणायाम ल्लाघवञ्च ध्याना त्प्रत्यक्ष मात्मनि ।
समर्धिना निर्लीन च मुक्ति रेव न सांया ।।

(घरैण्ड सं०)

शरीर का शोधन ६ कर्मों से होता है। आसनों से शरीर में दृढ़ता आती है। मुद्राओं से दृढ़ता स्थिर रहती है। प्राणायाम से शरीर में स्फूर्ति तथा हल्कापन आता है। प्रत्याहार से धीरता बढ़ती है। ध्यान से समाधि के द्वारा परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि धारणा, ध्यान, समाधि के सहकारी यम-नियमों के समान ही ये षट्कर्म तथा मुद्रायें भी योग में सहायक हैं।

हठयोग में शरीर शोधन के छः साधन बतलाये गये हैं।

धौतिर्वस्तिथा नेतिनीलोकिस्त्राटकस्तथा ।
कपालभाति श्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत् ।।

(गोरक्ष संहिता)

धौति, वस्ति, नेति, नौंलि, त्राटक और कपालभाति इन छः कर्मों को शरीर शोधन क्रिया या षटकर्म कहते हैं।

इन कर्मों के जिज्ञासुओं अर्थात् साधक को किसी जानकार व अनुभवी गुरु से ही सीखना चाहिए। यहाँ पर पाठकों की जानकारी हेतु इसका साधारण वर्णन किया जा रहा है।

१. धौति

धौति क्रिया तीन प्रकार की होती है।

१. वारि धौति

२. ब्रह्म धौति

३. वास धौंति

१. वारि धौति या कुञ्जल कर्म–सर्वप्रथम हम जल को गुनगुना करके उसमें मात्रानुसार नमक मिलाकर (एक लीटर पानी में एंक छोटा चम्मच नमक) जितना पानी आसानी से ही काग आसन में बैठकर पीते हैं। इसके बाद छाती को हिलाकर वमन कर देते हैं। इसको गज करणी भी कहते हैं। क्योंकि जिस तरह हाथी सूँड़ से जल को खींचकर बाहर फेंकता है, उसी तरह इस क्रिया में भी पानी पीकर बाहर निकाला जाता है। इसलिए इसका नाम गज करणी पड़ा है। शुरू-शुरू में साधक को थोड़ी परेशानी होती है। इसके लिये साधक को चाहिए कि जल पीने के पश्चात् सीधे खड़े होकर तालु के ऊपर जो छोटी जिह्वा है उसे हाथ की दो अंगुलियों से थोड़ा दबायें तो पानी अपने आप बाहर आने लगता है। इस क्रिया को महीने में दो से चार बार ही करना चाहिए! यह क्रिया केवल सुबह नित्य कर्म से निवृत्त होकर शुद्ध हवादार खुले एकान्त स्थान पर करनी चाहिए। जो साधक अंगुली डालकर गज करणी करते हैं उन्हें चाहिए कि हाथ को अच्छे ढंग से साबुन आदि से साफ रखें और नाखून भी बढ़े न हों।

लाभ–कुञ्जल कर्म मुख्यतः आन्तरिक सफाई में ज्यादा लाभप्रद है। इस कर्म से गले का कफ-पित्त बाहर निकाल कर हृदय व शरीर स्वच्छ रखता है। इससे कभी सर दर्द नहीं होता साथ ही साथ भूख तीव्र कर स्मरण शक्ति भी तेज करता है। साधक को यह कर्म हफ्ते में एक बार जरूर करना चाहिए।

२. ब्रह्म धौति–रबर का ट्यूब या सूत का बनी हुई बारीक रस्सी के टुकड़े नमक मिला गुनगुना पानी पीने के पश्चात् बिना दाँत लगाये दूध के घूट के समान निगला जाता है। फिर छाती को हिलाकर उस सूत को बाहर खींचकर वमन कर देते हैं। इस क्रिया को ब्रह्म धौति कहते हैं। यह क्रिया सुबह ही खाली पेट की जाती है।

लाभ–ब्रह्म धौति नाम से ही स्पष्ट होता है कि ब्रह्म स्थान की सफाई होती है। इस रस्सी के टुकड़े से अन्दर फँसे मल बाहर आ जाते हैं जिससे हृदय एवं ग्रंसिका नली एकदम साफ हो जाती है।

३. वास धौति (वस्त्र-धौति)–इस क्रिया को बहुत सावधानी और अनुभवी साधक से समझकर करना चाहिए। इस क्रिया के लिए तीन इंच चौड़ा और २० फीट लम्बा बारीक मलमल जैसे कपड़े की जरूरत होती है। इस धौति को खाली पेट सुबह के समय पानी में भिगोकर प्रारम्भ में दूध से धौति को एक सीरे से बिना दांत लगाये निगल जाना है, शुरू-शुरू में थोड़ी कठिनाई होती है और उल्टी होने लगती है। इसके लिए एक घूंट गुनगुना पानी साथ में पी लिया जाता है। पहले-पहल पूरी धौति नहीं निगली जा सकती। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाया जाता है, पूरी धौति निगलने के पश्चात् कुछ धौति बाहर शेष रखते हैं जिसके बाद नौलि चालन करके धौति को धीरे-धीरे बाहर निकाल देते हैं और अगर आप पानी पिये हैं तो उसे भी वमन कर देते हैं।

सावधानी–धौति तह करके पानी में भिगोना चाहिए। जितना भाग हमें अन्दर लेना है उसके चार तह करते जायँ। कभी-कभी धौति निगलते समय अन्दर फंस जाती है, अगर ऐसा होता है तो तुरन्त धौति को बाहर खींचते हैं, अगर फिर भी फँसी हुई प्रतीत होती है तो दो या तीन इंच अन्दर निगल कर बाहर खींचें। इस क्रिया को दो या तीन बार करने से धौति बाहर निकल जाती है, और जल्दी करना है तो एक लीटर जल पीकर वमन क्रिया करें तो धौति बाहर आ जाती है।

यह असावधानी तभी होती है जब साधक धौति जाने व निकालने में देर करता है। इस क्रिया को करने में ज्यादा से ज्यादा पांच या सात मि० ही लगे। साधक पहले एक या दो फीट ही अन्दर निगले और निगलते समय पानी को पीता जाय। यदि उल्टी आने की संभावना है तो मुँह को नीचे की ओर रखें और धौति के सिरे पर थोड़ा मधु या शक्कर लगा लें।
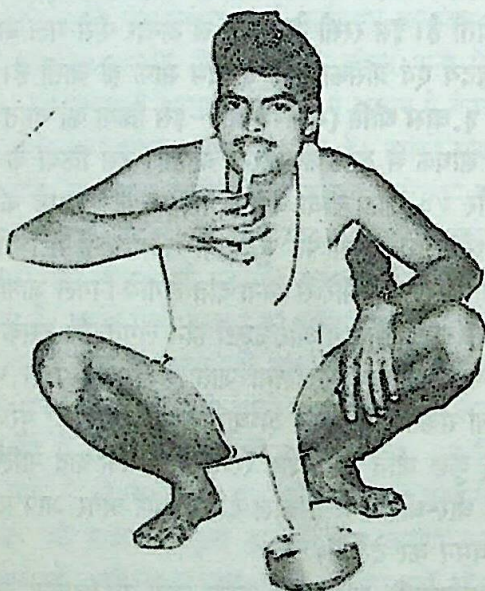
लाभ–इस क्रिया को करने से शरीर में फँसे अन्दर अँतड़ियों का मल बाहर निकाल फेंकता है और कफ, पित्त को भी बाहर निकालता है। इस क्रिया को करने से मनुष्य को कभी पेचिस, पेट दर्द नहीं होता, वायु विकार का कभी इंसान शिकार नहीं होता। शरीर शुद्ध और निर्मल होता है।

घेरंड संहिता में धौति कई प्रकार की बतलाई गयी है।

(१) अन्तः धौति

(२) दन्त धौति

(३) हृद्धौति

१.अन्तः धौति–अन्तः धौति के चार भेद हैं–वातासार, वारिसार, वह्निसार, वहिष्कृत।

वातासार–दोनों ओठों को सिकोड़ कर कौवे के चोंच समान बनाकर धीरे-धीरे वायुपान इतना करते हैं, कि पेट पूर्णतया भर जाय। इसके पश्चात् वायु को अन्दर ही पेट में संचालित करके धीरे-धीरे नासिका द्वारा बाहर निकाल देते हैं। इसको काकी प्राणायाम या काकी मुद्रा के नाम से भी जानते हैं।

लाभ–शरीर और आत्मा शुद्ध और निर्मल होता है। पेट के रोग दूर होते हैं और फेफड़े में शक्ति आती है, कण्ठ रोग से मुक्ति मिलती है।

वारिसार अन्तः धौति या शंख प्रक्षालन क्रिया–एक बड़े से वर्तन या टव में आठ लि० पानी गुनगुना करके रखते हैं। उसमें एक छोटा चम्मच नमक तथा साबुन का घोल मिलाकर तैयार करते हैं। इसके बाद उसमें एक बड़ा नींबू निचोड़ देते हैं। अब कागासन में बैठकर (जिस तरह शौच करते समय बैठते हैं) दो गिलास जल पीकर को चार बार सर्प आसन करते हैं या दायें बायें कमर मोड़ते हैं। इसके बाद सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को सीधा फैलाकर (हस्तपादासन) कमर के ऊपरी भाग को क्रमशः दायें-बायें मोड़ते हैं। इसके बाद पेट का संचालन करते हैं। उदरकर्णासन और पुनः कटि चक्रासन की भांति चार बार खड़े होकर कमर को अगल-बगल घुमायें। इसके बाद पुनः एक गिलास पानी पीयें और वही क्रिया पुनः आरम्भ करें जो पहले किये थे। इसी तरह हर गिलास पानी पीने के बाद सभी चारों आसनों को क्रमशः चार-चार बार करते जायँ। यह क्रिया आठ गिलास पानी पीने तक करें अर्थात् आपको जब तक शौच महसूस न हो

जाय। जब आपको शौच लग जाय तो तुरन्त आसन छोड़कर शीघ्र शौच करने चले जायं और शौच के बैठने पर भी (उदर कर्णासन) पेट को अन्दर बाहर संचालन करते रहें और शौच के बाद पुनः जल पीकर चारों आसन करें और शौच हेतु जायं। पहले शौच के समय मल निकलेगा उसके बाद पतला मल निकलेगा, इसी क्रिया को चार बार दोहराने से आप जिस तरह जल पियेंगे उसी प्रकार शौच करेंगे। जब तक सफेद पानी गुदा मार्ग से न निकले तब तक जल पीकर चारों आसन करते जायँ।

जब गुदा मार्ग से सफेद पानी निकलने लगे तब यह क्रिया पूर्ण हुई। इसके बाद दो तीन गिलास नमक मिला गुनगुना पानी पीकर वमन कर दें, इसके बाद ठंडे पानी से स्नान करें। यह सारी क्रिया बन्द कमरे में ही करना उचित है, शंख प्रक्षालन क्रिया के आधे घंटे बाद मूंग की पतली खिचड़ी या गेहूं की दलिया खायें। भोजन में गाय का मात्रानुसार घी डालें। भोजन करते समय पानी बिलकुल न पीयें। खटाई, मिर्च का सेवन न करें। जिस दिन यह क्रिया करें उस दिन दूध, दही का सेवन न करें। शंख प्रक्षालन क्रिया वर्ष में दो या तीन बार ही करते हैं। खास तौर पर ऋतु परिवर्तन होता है तभी क्रिया की जाती है।

लाभ–शरीर शुद्ध होकर कान्तिमान् होता है। पेट और आँतों के रोग दूर होकर शरीर निर्मल होता है।

बहिसार अन्तः धौति–पेट को फुलाने व सिकोड़ने को अन्तः धौति कहते हैं। इस क्रिया में पेट को मेरु दण्ड में १० बार लगायें और फुलायें ताकि नाभि ग्रन्थि पीठ में लग जाय। इसके निरन्तर अभ्यास से पेट रोग दूर कर जठराग्नि प्रदीप्त करती है।

वहिष्कृत अन्तः धौति–कौवे के चोंच के समान ओठ बनाकर इतना वायुपान करते हैं कि पेट पूर्णतया भर जाय। इस वायु को आधे घंटे तक पेट में रोकें इसके बाद गुदा मार्ग द्वारा बाहर निकालें जब तक इतना अभ्यास न हो जाय इस क्रिया को करने का यत्न न करें, अन्यथा वायु

कुपित होने का भय है।

लाभ—जैसे यह क्रिया करना कठिन है उसी तरह इसका लाभ भी है इसमें सभी नाड़ी शुद्ध हो जाती है।

दन्त धौति

दन्त धौति चार प्रकार की होती है—

(क) दन्त मूल **(ख) जिह्वा मूल**

(ग) कर्णरन्ध्र **(घ) कपाल रन्ध्र।**

(क) दन्तमूल धौति :

वज्रदन्ती (चींचड़ी का पौधा) या आम की हरी पत्ती को खुब चबाना चाहिए जिस तरह पान कूँचा जाता है। इस क्रिया के दौरान रस को बाहर थूकते हैं, इस क्रिया को नित्य करने से दातों में हो रही बीमारी, पायरीया, खून बहना आदि रोग से मुक्ति मिलती है।

(ख) जिह्वामूल धौति :

जैसा हम देखते हैं कि हमारे शरीर में कफ आदि जिह्वा में नीचे फँसे रहते हैं। हम अपनी तीन अंगुलियां तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा गले के अन्दर जिह्वा की जड़ तक बार-बार खींचते हैं इससे कफ आदि बाहर निकल जाता है।

(ग) कर्णरन्ध्र धौति :

जिस तरह नाद प्रकट करने की क्रिया होती है उसी तरह कर्णरन्ध्र धौति है। तर्जनी और अनामिका दोनों अंगुलियाँ को मिलाकर कानों के छिद्रों को साफ करें इससे नाद प्रकट होता है।

(घ) कपालरन्ध्र धौति :

सिर के गड्ढे को दाहिने हाथ के अंगुठे द्वारा प्रतिदिन जल से साफ करें यह क्रिया सूर्य के अस्त होने पर या भोजन के अन्त में और निद्रा के उठने पर की जाती है इससे नाड़ियाँ स्वच्छ एवं दृष्टि तीव्र होती है।

दण्ड धौति

इसके भी ३ भेद हैं –

(१) दण्ड धौति (२) वमन धौति (३) मूल शोधन।

(१) दण्ड धौति :

केले के दण्ड या चिकने बेंत के दण्ड या वट वृक्ष की जटा को धीरे-धीरे हृदय स्थल में प्रविष्ट करें फिर हृदय में चारों तरफ घुमाकर शक्ति पूर्वक बाहर निकाल दें, जिससे पित्त, कफ, अकुलाहट आदि विकार, मल बाहर निकल जाता है और हृदय के सारे रोग दूर होते हैं। यह क्रिया भोजन के पूर्व की जाती है।

(२) वमन धौति :

खाली पेट खुब पानी पीकर रबड़ के बने पाइप को अन्दर ले जाकर पानी को बाहर निकाला जाता है। इस क्रिया को बहुत सावधानी से पानी पीकर पाइप को धीरे-धीरे अन्दर प्रविष्ट करते हैं और आगे की तरफ झुककर पीते हुए पानी को बाहर निकाल लेते हैं। इस क्रिया को करने से कफ, पित्त आदि दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(३) मूल शोधन या गणेश क्रिया :

कच्ची मूली की जड़ या तर्जनी अंगुली को सावधानी से गुदा मार्ग को बार-बार जल द्वारा साफ करते हैं इसके बाद घृत या मक्खन लगाकर अंगुली से गुदा के अन्दर बार-बार कुछ देर तक घुमाने से अन्दर का मल बाहर आ जाता है और इस क्रिया से उदर रोग, अर्शरोग, वीर्यदोष, बवासीर आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

२. बस्तिकर्म

बस्ति मूलाधार के समीप है गुदा से जल खींचकर आँतों को नौलि क्रिया द्वारा धोकर जल को पुनः गुदा द्वार से बाहर निकाल देना वस्ति कर्म है, शुरू-शुरू में यह क्रिया करना कठिन है इसके स्थान पर एनिमा का भी प्रयोग किया जा सकता हैं इससे आतों का मल जल से मिलकर पतला हो जाता है जिससे मल सुगमता से बाहर निकल जाता है।

विधि : सर्वप्रथम हम किसी बड़े टब में शुद्ध जल भर कर उत्कट आसन में बैठकर किसी धातु या लकड़ी की बनी नली इतनी मोटी हो जो सुगमता से गुदामार्ग में जा सके, नली लगाने पर गुदा मार्ग को सिकोड़ने से जल उदर में पहुँचने लगता है। यथा शक्ति जल चढ़ाकर नौली संचालन कर गुदा मार्ग द्वारा पानी को बाहर निकाल देते हैं। इससे पेट का पुराना मल एवं आँतों में फँसे हुए अन्य मल भी बाहर आ जाते हैं। इससे पाचन शक्ति तीव्र होती है और आंतों के रोग दूर कर कान्ति चेहरे पर आती है।

सावधानी : नली बनाने में ध्यान रहे उसका छिद्र एक तरफ इतना हो कि कनिष्ठा अंगुली चली जाय और दूसरी ओर तर्जनी। टब में इतना जल भरें कि बैठने पर जल कमर तक रहे, याद रहे यह क्रिया केवल सुबह ही की जाती है। बहुत से साधक इसे नदी या तालाब में भी करते हैं इससे पहले पानी का निरीक्षण कर लें कि पानी शुद्ध है। उसमें कीड़े या जोक नहीं हैं और पानी बहता हुआ होना चाहिए।

पवनवस्ती (शालनकर्म)

जमीन पर कुर्मासन होकर लेट जायं धीरे-धीरे आस्विनीमुद्रा अथवा गुदा मार्ग का आकुंचन और प्रसारण करें इसके अभ्यास से वायु को अन्दर और बाहर लिया छोड़ा जाता है।

लाभ : 'उदर गत, वायुशोला, जलोदर, धातु दोष, वात, कफ, पित्त आदि रोग ठीक होता है साथ ही साथ ज्ञानेन्द्रियाँ कमेन्द्रियाँ स्वच्छ होती हैं। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर ही वस्तिकर्म करना चाहि अन्यथा कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

३. नेतिकर्म

नेति तीन प्रकार की होती है

(१) जल नेति (२) सूत्र नेति (३) कपाल नेति।

१.जल नेति : शंख अथवा टोटी लगे लोहे या कमण्डल से जल भरकर मुख को ऊपर उठाकर नासिका के एक छिद्र से टोटी को लगाकर जल को नाक में डालें और मुख खोल दें तो दूसरी नासिका से जल अपने आप बाहर आ जाता है। यह क्रिया दोनों नथुने से बारी-बारी दो या तीन बार करें।

लाभः जल नेति सर्दी जुकाम के लिए रामवाण है तथा सिर दर्द को दूर कर दिमागी उलझन भी दूर होती है।

२. कपाल नेति : मुँह में जल भरकर नासिका द्वारा बाहर निकालने को कपाल नेति कहते हैं।

लाभ : नेति कपाल को शुद्ध करती है। नासिका एवं कण्ठ के मल को बाहर निकालती है। जुकाम होना रुकता है। नजला कण्ठ में नहीं गिरता सर दर्द दूर होता है। मोतियाबिन्द से छुटकारा मिलता है।
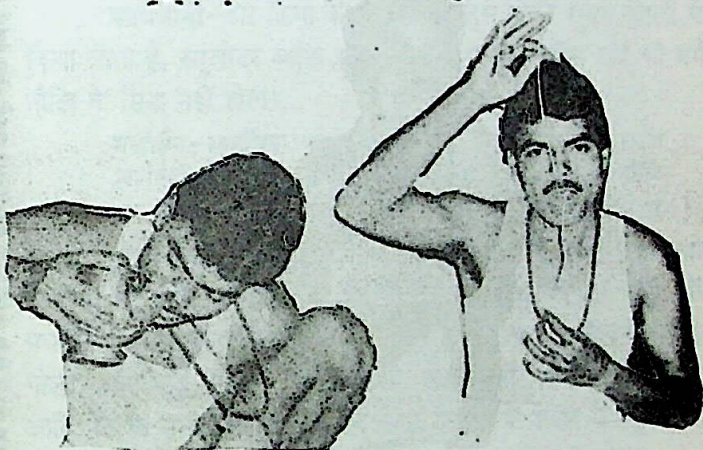
३. सूत्र नेति : सूत्र नेति क्रिया के लिए दस पन्द्रह तार से बटी रस्सी मोम लगी हुई दो या डेढ़ फीट लम्बी लेते हैं और इस नेति को गिलास में पानी भरकर भिगोकर समीप रख लें। अब मोम भाग रस्सी अंगुली में दबाकर जो स्वर चलता हो उसी नथुने में धीरे-धीरे डालें छींक आने पर निकाल लें और फिर प्रयास करें। जब नेति कण्ठ तक पहुँचने लगे तो दाहिने हाथ की दो अंगुलियों से सूत्र को बाहर खींचने का प्रयास करें। साथ में बायें हाथ से रस्सी को अन्दर डालते हैं। इसी प्रकार दूसरे नथुने से करें। इस क्रिया में शीघ्रता कदापि न करें। अर्थात् कष्ट के साथ-साथ नाक से रक्त भी आ सकता है। अभ्यास से परिपक्व हो जाने पर रस्सी को अन्दर बाहर दोहनी क्रिया करें।

लाभ : सूत्र नेति से नाक में फँसे मल, पित्त आदि बाहर आ जाते हैं, जिससे श्वांस क्रिया ठीक से चलती है। सिर दर्द एवं नेत्र रोग भी दूर होता है।

४. नौलि

नौलि शुरू-शुरू में करना जरा कठिन है। इसलिए नौलि क्रिया के पहले हम उड्डियान बन्ध लगाते हैं। उड़ियान बन्ध के बाद खड़े हो जाते हैं और श्वांस को बाहर निकाल कर पेट को पीठ में यथा शक्ति टिकाये रखते हैं। इसके निरन्तर अभ्यास से नौलि निकलनी आरम्भ हो जाती है। नौलि क्रिया करने के लिए पूर्ववत खड़े रहें और दोनों हाथों को पैर की दोनों जांघों पर दबाते हैं। अब अपान वायु को धकेल कर उदर में नाभि के

सामने अँतड़ियों को बड़ी करें। इससें मल स्वयं बाहर आ जाता है।

अब इसी नल को हम दायें बायें घुमाते हैं जिसे हम दायीं नौलि एवं वाम नौलि कहते हैं। इस क्रियामें हम अपने हाथों को जाघों पर रगड़ते हैं जिससे अपने आप नौलि चालन हो जाती है।

सावधानी—इस क्रिया को शौच से निवृत्त होकर सुबह खाली पेट किया जाता है, स्थूलोदर व्यक्ति इसे नहीं कर सकते। वस्ति कर्म भी वगैर नौलि के सिद्ध नहीं होता।

मन्दाग्नि—सन्दीपन पाचनादि सन्धा पिकानन्दकरी सदैव ।
अशेषेण दोषामय शोषिणी च हठ क्रिया भांती प्रिय च नौलि।

(हठयोग प्र०)

लाभ—यह क्रिया हठ योग की छः क्रियाओं में सबसे उत्तम मानी गयी है। यह नौलि मन्दाग्नि को प्रदीप्त करती है। आहार को भली भाँति पचाती है और साधक को सदा प्रसन्न रखती है, पेट का कड़वापन, पेचिस, गोला, आम बात, पित्त, कफ, संग्रहणी, उदर पीड़ा, वीर्य दोष, मल-मूत्र आदि पेट के सभी रोगों से मुक्ति दिलाकर साधक के शरीर में स्फूर्ति और प्राण में नव जीवन उत्पन्न कर देती है। जलोदर कभी नहीं होता।

५. त्राटक

किसी भी अभ्यस्त आसन में बैठकर अगरबत्ती या घी का दीपक जलाकर लगभग चार या पांच फीट की दूरी से अपलक (बिना पलक झुकाये) दृष्टि से देखते रहें। जब नेत्रों में जलन होने लगे तब नेत्र बन्दकर शान्त बैठकर छोड़ दें। त्राटक के लिए सफेद कागज पर मटर बराबर बिन्दु बनाकर या ॐ को दीवार में लटका कर त्राटक करें: त्राटक के लिए और अनेक साधन हैं। जैसे—पुष्प, निर्मल जलाशय, तारे, चन्द्रमा, किसी महान पुरुष का चित्र, प्रिय लगने वाला कोई पदार्थ, मणि, हीरा, नीलम, पोखराज, उगता सूरज आदि पर भी त्राटक किया जाता है। तीव्र तेज पर

त्राटक न करें, त्राटक करते समय दोनों दृष्टि का ध्यान उसी बिन्दु पर होना चाहिए। तभी त्राटक में सफलता मिलती है। त्राटक का समय धीरे-धीरे बढ़ाते जायं। शक्ति अनुसार त्राटक कई घंटे करते रहें।
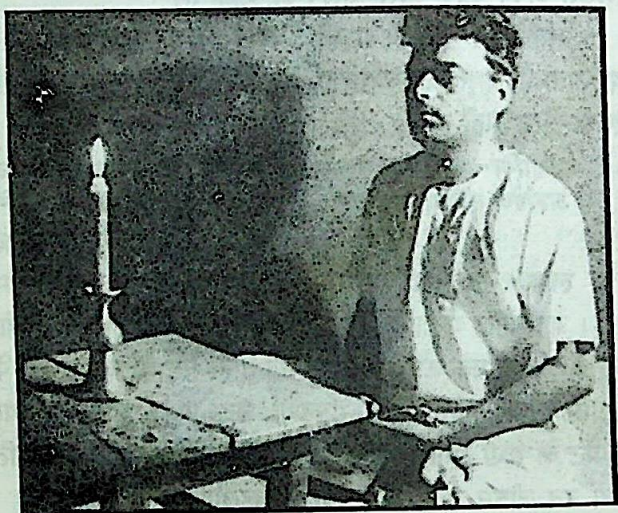
कई आचार्यों ने त्राटक के तीन भेद बतलाये हैं—

१. आन्तर त्राटक २. मध्य त्राटक ३. बाह्य त्राटक

१. आन्तर त्राटक : नेत्र बन्दकर हृदय, नाभि या आन्तरिक स्थानों में चक्षुवृत्ति की भावना को आन्तर त्राटक कहते हैं।

२. मध्य त्राटक : किसी धातु या कागज पर या पत्थर पर काली स्याही से ओइम् को खुले नेत्रों से देखने को मध्य त्राटक कहते हैं।

३. बाह्य त्राटक : चन्द्रमा, तारा, उगता सूर्य आदि दूर की वस्तु को देखने को बाह्य त्राटक कहते हैं।

इसके बाद हम त्राटक नेत्र को घुमाकर कर सकते हैं। किसी सुखासन में बैठकर अपना एक हाथ सामने सीधे करके मुट्ठी बांधकर अंगूठे

को उठाकर नेत्र के सीध में रखते हुए उसी पर दृष्टिपात करते हैं। अब हाथ को धीरें-धीरे दाहिनी तरफ घुमाते चले जाते हैं, इसका अभ्यास दोनों हाथों से नेत्र बारी बारी करते हैं। इसके निरन्तर अभ्यास से हमारे नेत्र इतने चंचल हो जाते हैं कि हम अपनी पुतलियों को इतना अन्दर प्रविष्ट कर देते हैं कि बाहर से दिखाई नहीं पड़तीं इस तरह नेत्र के ऊपर नीचे भी अभ्यास करते हैं तथा नासाग्र को भी घंटों देख सकते हैं।

लाभ : त्राटक कर्म से मुद्रा सिद्ध होती है, नेत्रों के रोग नष्ट होते हैं तथा दृष्टि तीव्र होकर दूर दृष्टि बन जाती है। तंन्द्रा निद्रा और आलस को दूर करता है। नेत्र में इतनी शक्ति आ जाती है कि दिन में तारे नजर आने लगते हैं।

६. कपाल भाति

कपाल भाति तीन प्रकार की होती है—

१. बात कर्म कपाल भाति।

२. व्यूत कर्म कपाल भाति।

३. शोत कर्म।

१. बात कर्म कपाल भाति—अभ्यस्त आसन में बैठकर दाहिने अंगूठे से दाहिने नथुने को दबाकर बायें नथुने से बलपूर्वक वायु को अन्दर खींचें और बिना कुम्भक किये दूसरी नासिका से बाहर निकाल दें। इस प्रकार अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक, पूरक प्राणायाम को कपाल भाति कहते हैं, आरम्भ में दस बार करें, फिर धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। इससे नाड़ी शोधन सिद्ध होता है मस्तिष्क और आमाशय की शुद्धि होकर पाचन शक्ति बढ़ती है।

इसके बाद बात कर्म में दोनों नासिका से एक साथ उपर्युक्त रीति से अन्दर खींचना और बाहर निकालना है।

२. व्यूत कर्म कपाल भाति–नासिका में जल भरकर मुख से बाहर निकालने की क्रिया को व्युत कर्म कपाल भाति कहते हैं, इस क्रिया को दायीं और बायीं नासिका से बारी-बारी करें।

३. शीत कर्म कपाल भाति–मुंह में पानी भरकर नासिका से बाहर निकालना जैसे हम नेति कर्म में जल नेति करते हैं उसी तरह कपाल नेति भी करते हैं।

लाभ : यह क्रिया नाड़ी को शुद्ध करती है, पेट को घटा कर पाचन शक्ति बढ़ाती है। विशेष रूप से कफ दोषों का निवारण होता है। शारीरिक शक्ति एवं स्फूर्ति को बढ़ाती है।

यह क्रिया कुण्डलिनी जागरण में सहायक होती है।

□□□

मुद्रा

मुद्रायें शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण में शुद्ध करके आत्म दर्शन की योग्यता साधक को प्रदान करती हैं। कुण्डलिनी जागरण एवं प्राणायाम में मुद्रा सहायक होती है। मुद्रायें विभिन्न प्रकार की होती हैं लेकिन हम मुख्य मुद्राओं का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

१. योग मुद्राः–

योग मुद्रा पद्मासन लगाकर बाह्य कुम्भक करें। अब तीनों बन्ध लगाकर धीरे–धीरे आगे की तरफ झुकते हुए मस्तक को पृथ्वी पर लगा दें। इस स्थिति में यथाशक्ति रूके रहें, छाती जितना झुका सकें झुकाये रहें।। पूरक करते समय सिर उठा लें पुनः रेचक कर बाह्य कुम्भक कर पूर्व स्थिति में आ जायं। इस क्रिया को कई बार करें।
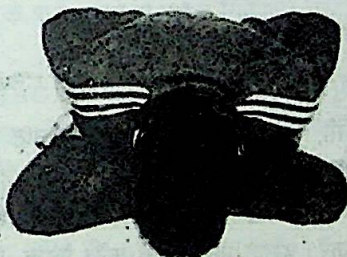
लाभः– नाड़ी शुद्ध और प्राणों को शक्ति मिलती है। शरीर स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है।

२. महामुद्राः– पैर को सामने फैलाकर बैठ जायं और दायां पैर

मोड़कर एड़ी को गुदा के बीच दृढ़ता से जमा दें। अब आगे झुककर दोनों हाथों से पैर की अंगुलियों को पकड़ें, और पूरक विधि से प्राण को अन्दर भरकर जालन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति रूकें और इसके बाद रेचक करें। यह क्रिया दोनों पैर से बारी–बारी करें।

लाभः– खाँसी, पुराना ज्वर क्षय रोग आदि नष्ट होता है।

३. महाबन्धः– बायें पैर की एड़ी को सीवनी में दृढ़ता से जमा दें और दायां पैर जांघ पर रख लें। पूरक कर जालन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। इसके बाद रेचक करें। रेचक–पूरक की संख्या बराबर हो। यह क्रिया दोनों पैर से बारी–बारी करें।

लाभः– यह चक्र भेदन का द्वार खोलकर कुण्डलिनी जागृत करने में सहायक होता है। खाँसी, ज्वर, क्षय, गुदावर्त आदि रोग ठीक होता है।

४. महावेधः– जैसे हम ऊपर महाबन्ध मुद्रा करते हैं ठीक उसी स्थिति में होकर पूरक कर कुम्भक कर लें। हाथों को जमीन पर रखकर बायें पैर सहित शरीर को उठा लें। एड़ी द्वारा सीवनी प्रदेश का ताड़न करें, यह

क्रिया अक्सर पद्मासन में ही करनी चाहिए, क्योंकि जब शरीर हाथों से उठाया जाता है तो मूल बन्ध स्थिर नहीं रहता। इसे भी पैर बदल कर करें।।

लाभः— बुढ़ापे में शरीर पर कहीं झुर्रियां नहीं पड़तीं। बाल का सफेद होना रूकता है। अंग काँपते नहीं। कुबड़ापर नहीं आता। जठराग्नि तीव्र होती है।

५. योनि मुद्राः— सिंहासन में बैठकर दोनों कानों को अंगूठे से और दोनों तर्जनी से नेत्रों और मध्यमा से नथुनों को और अनामिका से दोनों ओष्ठ दबा लें, स्वंय अन्दर खींच कर उदर गर्त से मिलायें। सब द्वार बन्द कर ॐ का मानसिक जाप करें।

लाभः— सब सफलता साधक के परिश्रम पर है। चक्र दर्शन एवं कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

६. काकी मुद्राः— सिंहासन में बैठकर कमर गर्दन सीधा करते हुए ओठों की सहायता से जीभ को कौए की चोंच सा बनाकर पूरक करके कुम्भक करें, अब हाथ को योनि मुद्रा सा बनाकर सभी इन्द्रियों को बन्द करें। अब यथाशक्ति कुम्भक कर दक्षिण नथुने से धीरे–धीरे रेचक करें। इस प्रकार समस्त क्रिया करके बायें नथुने से श्वांस निकालें। इस क्रिया को कई बार करें।

लाभः— इससे पित्त शान्ति कर अम्ल पित्त के विकार नष्ट होते हैं। दिव्य ज्योंति की उत्पत्ति होती है तथा बाह्य नेत्र दृष्टि की वृद्धि होती है।।

७. अश्वनी मुद्राः— सुखासन में बैठकर गुदा को अन्दर और बाहर सिकोड़ने व छोड़ने का आकुंचन और प्रसारण करें। जिस तरह गाय या घोड़ा मल त्यागते समय करते हैं। इसे कई बार करें।

लाभः— गुदा मार्ग में हो रही बीमारी से मुक्ति मिलती है और कुण्डलिनी शक्ति सिद्ध जागृत होती है।

८. खेचरी मुद्राः— उत्कष्ट आसन में बैठकर जीभ को पकड़कर दोहनी कर्म अर्थात् जिस तरह गाय दुही जाती है, उसी प्रकार दुहें और उसके बाद त्रिफले का चूर्ण लगाकर मलते रहें। यह क्रिया तब तक करें जब तक जिह्वा इतनी लम्बी कर लें कि जीभ कान तक बाहर से पकड़ में

आ जाय। उसके बाद जिह्वा अन्दर उलटकर कपाल कुहर में जाने योग्य बन जाती है। यह क्रिया करने में काफी समय लगता है। इसका एक विधान और है। अपने सामने दर्पण रखकर जीभ के निचले भाग को ब्लेड द्वारा थोड़ा–थोड़ा काट लिया करें तथा पूर्ण दोहनी कार्य करते रहें। अब जिह्वा को कपाल के अन्दर प्रविष्ट करने का यत्न करते रहें, इससे तीनों नाड़ियाँ बन्द हो जाती हैं।

लाभः– इस स्थिति में कपाल से जिह्वा में मधुर रस अर्थात् अमृत पान करते हैं खेचरी मुद्रा से साधक पन्द्रह दिन तक मृत्यु को वश में कर सकता है।

९. विपरीत करणी मुद्राः– जिस तरह शीर्ष आसन करते हैं ठीक उसी प्रकार हम विपरीत करणी मुद्रा भी करते हैं। अन्तर इतना है इसमें हथेलियाँ अलग–अलग जमीन पर रखें और पैर आकाश की ओर रहे। यथा शक्ति रूकें।

लाभः– बाल का सफेद होना, बाल झरना ठीक होता है। रक्त संचार उल्टा होने से नाड़ी शुद्ध हो जाती है और जठराग्नि तीव्र होती है।

१०. वज्रौली मुद्राः– एक विशेष प्रकार की बनी हुई रबड़ की नली लें केमिष्ट की दुकान से कैथेटर लें। अब घृत या तिल का तेल लगाकर नली को मूत्रन्द्रिय के छिद्र में डालकर अन्दर प्रविष्ट करायें। शुरू–शरू में थोड़ा दर्द होता है। पर अभ्यास हो जाने पर सुगमता से नली अन्दर चली जाती है। इसके बाद उत्कट आसन में बैठकर नौलि क्रिया द्वारा अतड़ियो को उठाकर मुलाधार को सिकोड़कर बाहर की वायु को पाइप द्वारा अन्दर खींचे। इतना अभ्यास हो जाने पर नली का नम्बर मोटा करते जायं। अब नौली क्रिया द्वारा जल दूध का भी आकर्ष किया जाय। दूध मूत्राशय से सब मूत्र को लेकर बाहर निकला जाता है। बहुत अभ्यासी पुरुष मधु का भी प्रयोग करते हैं।

लाभः– शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। मूत्र कृच्छ, प्रमेह, स्वप्न दोष नहीं होते। समाधि क्रिया में यह बहुत उपयोगी है।

११. शक्ति चालनी मुद्राः– वज्रासन में बैठकर दोनों स्वरों से पूरक

कर वायु को अपान से मिलाते हुए सुषुम्ना के अन्दर प्रवेश करें। इसके बाद गुदा मार्ग का संकोच विकोच करें। ऐसा करने से गुदा मार्ग द्वारा प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करने लगता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

लाभः— कुण्डलिनी शक्ति जागृत होना, चक्र ज्ञान खुलता है, आलस्य आमद और जड़ता दूर होती है।

१२. उन्मनी मुद्राः— अर्ध नेत्र खोलकर पद्मासन में बैठकर दृष्टि को नासाग्र पर या नासिका से एक फीट दूरी पर अलक्ष्य रूप में स्थिर कर दें, शरीर प्राण इन्द्रिय मन की गति रोककर योगी अपने स्वरूप में स्थित हो जायं।

लाभः— इस क्रिया से समाधि जल्दी लगती है और ज्ञान प्रकाश का उदय होता है।

१३. शाम्भवी मुद्राः— पद्मासन में बैठकर अलक्ष्य त्राटक करें। ध्यान हृदय में स्थिर रखें। नेत्र खुले होते हुए भी बाह्य पदार्थों को नहीं देखते। शरीर के अन्दर लक्ष्य पर टिके रहते हैं।

लाभः— जितना अधिक त्राटक का अभ्यास रहेगा उतना ही लाभ होगा।

१४. त्रिबन्ध मुद्राः— पद्मासन में बैठकर पूरक द्वारा श्वास को समान प्राण से मिलाकर त्रिबन्ध को लगाते हुए वायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट करने का यत्न करें और ऐसी स्थिति में दोनों हाथों को अगल-बगल रखकर नितम्बों को उठाकर जमीन परं धीरे-धीरे पटकें।

लाभः— कुण्डलिनी शीघ्र प्रकाशित होती है। चक्र भी प्रकाशित होता है।

१५. मातङ्गिनीः— जल में खड़ा होकर रीति द्वारा नेति करें। जल नाक द्वारा मुख से बाहर निकालकर मुंख द्वारा जल अन्दर बन्द कर नासिका से बाहर निकाल दें। इस क्रिया को कई बार करें।

लाभः— इससे सिर दर्द, नेत्र दर्द, जुकाम न होना आदि रोग ठीक होता है। साथ ही साथ बाल का पकना दृष्टि स्थिरता मुख पर तेज व कांति छा जाती है।

तत्व ज्ञान

यह मानव शरीर पाँच तत्त्वों के संयोग से निर्मित है जैसा कि तुलसीदास जी ने मानस में भी कहा है—

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा।।

आकाश, जल, अग्नि, पृथ्वी तथा वायु इन्हीं पाँचो तत्त्वों का संयुक्त रूप हमारा यह शरीर है। इसके साथ ही स्वर के माध्यम से ये पाँचों तत्व शरीर धारण एवं जीवन के संचालन में जीवन पर्यन्त अपनी भूमिका का निर्वाह करते रहते हैं।

इस प्रकार स्वर से इन पाँचों तत्वों का अभेद सम्बन्ध है। प्रत्येक स्वर लगातार एक घंटा तक चलता है और इसके बाद स्वयमेव बदल जाता है। एक स्वर के संचालन काल अर्थात् पांच घड़ी मिश्रित रूप से ये पांचो तत्व भी एक–एक घड़ी चलते रहते हैं। सर्वप्रथम आकाश तत्व चलता है और उसके बाद क्रमानुसार अग्नि, पृथ्वी और जल तत्व गतिशील होता है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि वायु तत्व स्वतंत्र रूप से स्वर के साथ नही चलता। चूँकि स्वर और समस्त तत्वों का आधार वायु ही है अतः वह अन्य चारों तत्वों में मिश्रित रूप से चलकर अपनी अवधि पूरी कर लेता है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि वायु तत्त्व स्वतन्त्र रूप से नहीं चलता है तो चार तत्त्वों के मिश्रित रूप में एक घड़ी का समय निर्धारण क्यों किया गया। जबकि उपरोक्त हिसाब से चारों तत्त्वों को १ चौथाई घड़ी चलना चाहिए क्योंकि वायु तत्व का एक घड़ी भी इन्हीं चार तत्वों में विद्यमान रहता है।

इस तत्व को समझने के लिए वायु की प्रमुख भूमिका को समझना होगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वायु सभी तत्वों सहित स्वरों सहित स्वरों के संचालन का माध्यम है। अतः उसके मिले बिना अन्य तत्वों का

कार्य--व्यापार कथमपि संभव नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि वायु तत्व अपनी घड़ी इन्हीं में समाहित कर लेता है। आयुर्वेद में भी वायु की संचरण एवं.संवहन क्षमता स्वीकार की गयी है। वहाँ कहा गया है कि कफ और पित्त मेघ के सदृश हैं जिन्हें वायु अपने प्रभाव से स्थानान्तरित कर विकारों को उत्पन्न करता है। इसीलिए इसका सम्बन्ध एवं सन्तुलन कफ पित्त की अपेक्षा कठिन होता है।

नाड़ी

माँ के गर्भ से बच्चा ज्यों ही इस संसार में आता है और प्रथम श्वांस ग्रहण करता है उसी समय से नाड़ी भी स्वाभाविक रूप से गतिशील हो जाती है क्योंकि श्वांस और नाड़ी का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित अथवा नित्य है। अतः एक दूसरे के अभाव में जीवन की गति संभव नहीं है। इससे यह भी स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रकार स्वर की संख्या निर्धारित है उसी प्रकार नाड़ी की भी संख्या निश्चित है।

नाड़ी एवं आयु का सम्बन्ध

प्रसव के बाद से एक वर्ष की आयु तक शिशु की नाड़ी गति एक मिनट में १४०, एक वर्ष के बाद १३०, तीसरे वर्ष में ११०, सात वर्ष से १४ वर्ष तक ६०, १४ से ३० वर्ष तक ८०, ३१ वर्ष से ४६ तक ६० तथा ५० से ८० वर्ष तक ४० होती है।

शरीर में जब भी कोई दोष आ जाता है स्वर की ही भाँति नाड़ी की गति भी परिवर्तित हो जाती है। बुखार आने पर नाड़ी की गति तेज हो जाती है और कमजोरी की हालत में मन्द पड़ जाती है। अन्य विकारों में भी नाड़ी सामान्य गति से हटकर कम या तेज गति से चलने लगती है। आयुर्वेद विज्ञान में नाड़ी के ही आधार पर निदान एवं उपचार की परम्परा है जहाँ नाड़ी का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है।

अतः स्वर के साथ ही नाड़ी का ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है। नाड़ी की सामान्य गति के साथ ही उसकी उछलकूद, भागदौड़ तथा अस्वाभाविक गति को भी समझना चाहिए। जब तक हम अपने शरीर के बारे में पूरी जानकारी नहीं रखेंगे तब तक ज्ञान विज्ञान की बातें पकड़ में नहीं आ सकतीं। किसी सन्त ने ठीक ही कहा है—

जिसने समझी अपनी काया।
वही जगत में सब कुछ पाया।।

कुण्डलिनी शक्ति

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतत्राणां तथाधारो हि कुण्डली।।

(हठयोग प्र०)

योग शास्त्र के सिद्धान्त से कुण्डलिनी, मन, प्राण, नाद और बिन्दु ये पांच विषय ब्रह्माण्ड के भावातीत तत्व का ज्ञान कराते हैं। इसलिए योग साधना में इनका जानना अति आवश्यक है।

कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी–शक्तिर्मुक्तिरुपाहि योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढ़ाना यस्तां वेत्ति स योगवित्।।

(योग शिखोपनिषद अ० ३)

यह आत्मशक्ति मूलाधार कन्द से ऊपर सोई हुई है। तुम अज्ञानी उसको नहीं जानते। इसलिए वह तुम्हारें बन्धन का हेतु है, परन्तु योगी लोग इस शक्ति को जानते हैं। वह उन्हें मोक्ष देने वाली कहलाती है।

कुण्डलिनी–शक्ति मूलाधार में साढ़े तीन फेरे लगाकर भुजग्ङाकृति होकर सोई हुई है। जब तक वह शक्ति निन्द्रित है तब तक तुम जीव पशु की तरह अज्ञान में हो। कुण्डलिनी शक्ति के जागे बिना कितना ही योग क्यों न किया जाय कदापि ज्ञान नहीं होता क्योंकि आधार शक्ति के सोने से सारा ब्रह्माण्ड सोया हुआ है और उसके जागने पर त्रैलाक्य जाग उठता है। अतः कुण्डलिनी के जागे बिना तुम्हारे ज्ञान के सभी साधन निष्फल हैं।

गुदा और मेरु के बीच में त्रिकोल मूलाधार चक्र है। वही जीव रूप शिव का स्थान कहा जाता है। वहीं पर कुण्डलिनी नाम की पराशक्ति प्रतिष्ठित है, जिससे प्राण वायु अग्नि और बिन्दु उत्पन्न होते हैं और जिससे नाद की प्रवृति होती है। यही निर्भय पद होने वाली विष्णु–शक्ति मानी गयी है। वह सोई हुई नागिन के समान चंचल शक्ति अपनी ही प्रभा से महा तेज से स्वयं प्रकाशित होती है। सुषुम्ना में संलग्न मूलाधार के सन्धि स्थान में जैसे सर्प कुण्डली मार कर सूक्ष्म होकर निष्क्रिय. निर्जीव सा मृतवत

समाधिस्थ रहता है वैसे ही यह वाग्देवी यवतीब मना बीच रूपिणी कुण्डलाकार होकर स्वर्ण के सदृश कान्ति विशिष्ट प्रतीयमान होती है विद्युत सम महाप्रभा मूलाधार कमल में स्थित प्रकशमान् आत्म शक्ति के अवलोकन से मुक्ति होती है।

ब्रह्माण्ड में जितनी शक्तियां हैं उन्हें ईश्वर ने इस शरीर में एकत्र कर दिया है। कुण्डलिनी शक्ति नाभि के पास एक अद्भूत शक्ति विद्यमान है जो बुद्धि में प्रकाश को उज्जवल कर देती हैं, जिससे मनुष्य के अन्दर दिव्य शक्ति उत्पन्न होने लगती है। यह त्रिकोण यानि मण्डल, जो इड़ा और पिंगला द्वारा अति सूक्ष्म विद्युत समान दिव्य शक्ति गुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। इस नाड़ी का प्रयोग शरीर सम्बन्धी कोई कार्य बाह्य दृष्टि से प्रतीत नहीं होता है।

कुण्डलिनी के और कई नाम शास्त्रों में दिये गये हैं। जैसे कि उपनिषद् की नचिकेता अग्नि हैं इसे आत्यात्मी अग्नि तथा सर्प शक्ति कहते हैं। विदेशी महिला मैडम ब्लेवेटस्की ने कुण्डलिनी शक्ति के बारे में काफी खोज–बीन की है। वे लिखती हैं–"कुण्डलिनी विश्व व्यापी सूक्ष्म विद्युत शक्ति है। जो स्थल बिजली की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशालिनी है, इसकी चाल सर्प की चाल की तरह टेढ़ी है। इससे इसे सर्पाकार कहते हैं। प्रकाश एक लाख पचासी हजार मील प्रति सेकेण्ड की गति से चलता है पर कुण्डलिनी की गति एक सेकेण्ड में तीन लाख पैतालिस हजार मील है।"

पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे "स्प्रिट–फायर" सर पेन्टर पावर कहते हैं।

कुण्डलिनी–जागृत करने के उपाय– कुण्डलिनी–शक्ति जागृत करना एक बहुत ही गूढ़ विषय है। इसको यूँ किताब में बता देना या कह देने से नहीं होता। यह मानव जाति में सबके वश के बाहर है। इसके लिए बहुत गहरी साधना एवं वैराग्य का होना जरूरी है। कुण्डलिनी शक्ति जागृत करना आपके अभ्यास के ऊपर है। हम इस पुस्तक में थोड़ा संकेत रूप से लिख दे रहे हैं जिससे इच्छुक साधक को थोड़ी सहायता मिल सकती है।

कुण्डलिनी जागृत वही व्यक्ति कर सकता है जो प्राण को

मुद्रा से शरीर शोधन कर लें। इसके अलावा बादाम का हलवा खाना चाहिए। रात को दूध जरूर लें।

कुण्डलिनी जागृत करने के लिए दोनों जांघों को दोनों पैर से दबाकर अर्ध पद्मासन या पद्म आसन में बैठकर मेरु दण्ड और गर्दन को सीधा कर मूल बन्ध लगाकर जिह्वा को खेचरी मुद्रा द्वारा अन्दर लगा लें। एकान्त स्थान में प्रातः और सायं कम से कम दो या तीन घण्टे ध्यान करें। प्राण को मूलाधार चक्र में लगाकर योनि मण्डल तक ले जाकर ऐसी भावना करें कि श्वास-प्रश्वास लगभग आ रहा है, मानसिक ध्वनि द्वारा ॐ का जाप करते करते ऐसी भावना करें कि कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करके मूलाधार को अर्धमुख करती हैं। इस क्रिया को दो वर्ष तक ध्यान से करें।

निम्नलिखित प्राणायाम मुद्रायें कुण्डलिनी शक्ति को चैतन्य करने में सहायक हो सकती हैं। इनमें सूर्य भेदी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, कपाल भाति, खेचरी मुद्रा विपरीत करणी मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्ति चालनी मुद्रा, महाबन्ध, महावेध मुद्रा आदि हैं।

कुण्डलिनी जागृत करँने का सबसे उत्तम उपाय तो मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक सब चक्रों का भेदन करना है, जहाँ पर अकस्मात किसी मनुष्य को अलौकिक शक्ति अद्भूत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आवे तो समझना चाहिए कि पूर्व जन्म के किन्हीं सात्विक संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्विक प्रभाव डालने वाली अन्य किसी घटना में कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गयी है त्रिवेणी ऊपर मस्तिष्क के मध्य केन्द्र से ब्रह्मरन्ध्र से सहस्त्रार कमल से सम्बन्धित और नीचे मेरुदण्ड का जहां नुकीला अन्त है वहां लिंग मूल और गुदा के बीच 'सीवन' स्थान की सीध में पहुँचकर रूक जाती है। यहीं इस त्रिवेणी का आदि अन्त है। सुषुम्ना नाड़ी के भीतर एक और त्रिवर्ण हैं जिसके अन्तर्गत भी तीन अत्यन्त सूक्ष्त धाराऐ प्रवाहित होती है जिन्हें वज्रा, चित्रणी और ब्रह्म नाड़ी कहते है जैसे-केले के तने को काटने पर उसमें एक के भीतर एक परत दिखाई पड़ती है वैसे ही सुषुम्ना के भीतर वज्रा है। वज्रा और चित्रणी के भीतर ब्रह्म नाड़ी है। यह ब्रह्म नाड़ी सब नाड़ियों का

मर्म स्थल, केन्द्र एवं शक्तिसार है। इस मर्म की सुरक्षा के लिए ही उस पर इतनी परतें पड़ी हैं–

कूर्म से ब्रह्म नाड़ी के गुन्थन स्थल को आध्यात्मिक भाषा में कुण्डलिनी कहते हैं। यह ब्रह्म नाड़ी मस्तिष्क के केन्द्र में है यह ब्रह्मरन्ध में पहुँचकर हजारों भागों में चारों तरफ फैल जाती है। जैसे–रेडियो, टी०वी० के सूक्ष्म मशीनों के विस्तारण फैलाये जाते हैं। जिंन तन्तुओं के द्वारा सूक्ष्म आकाश में ध्वनि फेंका जाता है, और बजती हुई तरंगों को पकड़ा जाता है। मस्तिष्क का एरियल भी सहस्त्रार कमल है जिनके द्वारा परमात्म–सत्ता की अनन्त शक्तियों को सूक्ष्म लोक में पकड़ा जाता है।

प्राणायाम की साधना अथवा षटकर्म करने से जब 'अश्वपुच्छ' की नाड़ियों में व्याप्त श्लेषा की अधिकता नष्ट हो जाती है, तब अपान प्राण की सर सराहट मूलाधार से लेकर शुष्मा शिखर तक अति वेग से आती–जाती प्रातीत होती है। प्राण की इस वेगवती अवस्था में कई बार साधकों के हाथ पैर बड़े वेग से झटके के साथ उठ ज़ाते हैं। कई बार साधक अपना आसन 'धरा' के ऊपर उठा हुआ अनुभव करते हैं। कई साधकों को घण्टों महानाद या चिड़ियों की चीं चीं, झींगुर की झंकार, मेघ गर्जन, वीणा, वंशी आदि की ध्वनियां वर्षों लगातार सुनाई देती हैं, किन्तु निरन्तर अभ्यास से प्राणों के उर्ध्व–गमन में प्रतिबन्ध के हट जाने पर यह प्राण धारा सीध सुषुम्ना से बहकर मस्तिष्क में जाने तथा भरने लगती है। साधक का अन्तःकरण सत्वोद्रेक से इतना भर जाता है कि इस समय वह अपने भविष्य को एक तृण के समान गुरु दक्षिणा के रूप में भेंट कर सकता है।

अगर एक बार कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि सदैव ऐसा ही होता रहेगा। विशेष विधि के क्रियात्मक होने से लेखन वृद्धि नहीं की जा सकती। इसके लिए किसी अनुभवी पथ प्रदर्शक से ही मिलें।

*

चक्र ज्ञान

चक्रों की साधना करने के लिए प्रातः काल शुद्ध शरीर और स्वस्थ चित्त होकर पद्मासन में बैठिए। ब्रह्म संध्या कर चुकने के पश्चात् मस्तिष्क के मध्य भाग भृकुटी में (एक रेखा एक कान से दूसरे कान तक खीची जाय और दूसरी रेखा भौहों के मध्य में से मस्तिष्क के मध्य तक खींची जाय तो दोनों का मिलन जहाँ होता है उस स्थान को भृकुटी कहते हैं। ॐ का मानसिक ध्यान करना चाहिए। मन को कुछ देर तक उसी में रखे। तब उसे आज्ञा चक्र कें स्थान में लाना चाहिए। ब्रह्म नाड़ी मेरु दण्ड से आगे बढ़कर आज्ञा चक्र में लाया जाता है। धीरे–धीरे चक्र स्पष्ट हो जाते हैं और इसी स्थिति में अभ्यास करने से ज्ञानेद्रियों और कर्मेन्द्रियों में अचानक कम्पन, रोमांच प्रस्फुरण, उत्तेजना जैसे अनुभव होते हैं। इसी क्रिया से ही चक्र ज्ञान की शुरुआत होती है और चक्रों के अभ्यास रत होते–होते जब कुछ समय व्यतीत हो जाते हैं या आप परिपक्व होने लगते हैं, तब एक चक्र से दूसरे चक्र में जाने का द्वार खुल जाता है। चक्र की साधना करते समय प्रतिदिन ब्रह्म नाड़ी में प्रवेश करके चक्रों का ध्यान करते हैं। यह ध्यान ५ मी० से प्रारम्भ करके ३० मी० तक करते हैं।

चक्र ज्ञान केवल योगियों को ही हो सकता है क्योंकि सुषुम्ना के भीतर बज्रा नाड़ी है। बज्रा नाड़ी के अन्दर चित्रणी है। चित्रणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है। ये नाड़ियाँ मकरी के जाले जैसी अति सूक्ष्म हैं। इनमें बहुत सी शक्ति का केन्द्र है। ध्यान द्वारा उत्तेजना पाकर जब ये उर्ध्व मुख होकर विकसित होती हैं तब उनकी अलौकिक शक्ति का विकास होता है।

अब आप ध्यान–योग का दिव्य दीपक लेकर चित्र को देखते हुए आगे बढ़ते हैं। चक्र कितने प्रकार के होते हैं। इसके रंग, रूप, स्वाद, अक्षर स्थान आदि का वर्णन निम्न है। साथक की जानकारी मात्र के लिये इनकी व्याख्या कर रहे हैं। इनका ध्यान दृष्टि से देख लें कि वहाँ पर क्या भासता

है?

चक्रों के नाम व उनके स्थानः–

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरकनाहतम्।
विशुद्धञ्च तथाज्ञंति षट चक्राणि विभावयेत्।।
आधारं गुह्य चक्रन्तु स्वाधिष्ठानञ्च लिग्ङकम्।
मणिपूरं नामि चक्र हृदयन्तु अनाहतम्।।
विशुद्ध कण्ठ चक्रन्तु आज्ञा चक्र च मस्तकम्।
चक्रभेदं मयाख्मातं चक्रातीत निरज्जनम्।।

(ज्ञान सकलिनी तंत्र)

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र, षट चक्र कहलाते हैं। मूलाधार को गुदा चक्र, स्वाधिष्ठान को लिग्ङ चक्र और मणिपूरक को नाभि चक्र, अनाहत को हृदय चक्र, विशुद्ध को कण्ठ चक्र, आज्ञा को भ्रूचक्र एवं सहस्त्र दल कमल सहस्त्रार को मूर्धा चक्र कहते हैं। चक्रों का यह भेद मैंने प्रकाशित किया है। इन षट् चक्रों से परे सहस्त्रार में निरञ्जन परमात्मा है।
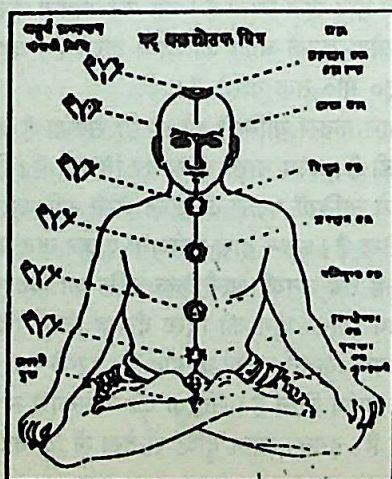
चक्र दर्शन का फल

चक्र ज्ञान केवल योगियों को ही हो सकता है। क्योंकि ब्रह्माण्ड के भीतर बज्र नाड़ी के अन्दर चित्रणी और चित्रणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है।। ये नाड़ियाँ मकरी के जाले जैसी अति सूक्ष्म हैं। इनमें बहुत सी सूक्ष्म अति शक्ति का केन्द्र है। अन्नमय कोश व्यापी प्राणमय कोश का विज्ञान भी उसके अग्रभूत प्रत्येक प्राण को उसके निवास स्थान देह के अंगों और चक्रों में हैं। इसलिए प्राण विषयक विज्ञान प्राप्ति के लिए विशेष उपयोगी साधना है। इस साधना से साधक की धारणा बलवती होकर कुशाग्र बन जाती है।। तभी सूक्ष्म तत्व के दर्शन एवं विज्ञान–प्राप्ति की योग्यता बढ़ती है। परन्तु आत्म साक्षात्कार की यह आकांक्षा तभी पूर्ण होगी जब कि साधक आत्मा के निवास स्थान तक पहुँचे।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष की इच्छा से इन चक्रों को इसी पूर्वोक्त क्रम से साक्षात् करे। इनका विज्ञान स्थूल देह–गत 'आत्म–भाव' अर्थात् अपने स्थूल देह को आत्मा समझते रहने के भाव को शिथिल करेगा और आत्म साक्षात्कार की ओर ले जायेगा। इनमें ध्यान द्वारा उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्व मुख होकर विकसित होते हैं तब उनकी अलौकिक शक्ति का विकास होता है।

दाँत से मोटर खींचना
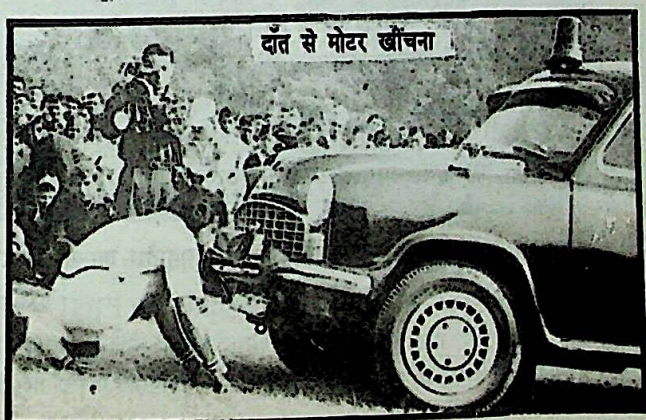
बन्ध

कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने तथा चक्र भेदन में बन्ध बहुत सहायक होता है।

मूलतः बन्ध तीन प्रकार के होते हैं।

१. जालधर बन्धः— कण्ठ को दबाकर ठोढ़ को स्कन्धस्थितियों के मध्यस्थान "हँसली" अथवा कण्ठ के नीचे स्थित गड़े कण्ठ—कूप में लगाते हैं। जिसमें द्वार प्रायः बन्द सा हो जाता है।

२. उड्डीयान बन्धः— उदर को सिकोड़कर नाभि को पीछे मेरुदण्ड के साथ लगा देने से बनता है।

३. मूलबन्धः— गुदा सहित अण्डकोशों को दृढ़ता से ऊपर की ओर आकर्षित करने से लगता है।

लाभः— ये तीनों बन्ध सुषम्णा में प्राण को शीघ्र प्रवेश कराकर कुण्डलिनी जागृत करने में सहायक हैं।

इसके अभ्यास से अनेक सिद्धिया प्राप्त होती हैं। बुढ़ापे में शरीर पर झुर्रियां नहीं पड़तीं, केश स्वेत नहीं होते, प्रांण शुक्ष्म होकर सुषुम्ना में काम करने लगता है। तब—इडा—पिंगला में प्राण संचार से समाधि भी लग जाती है।

इन तीनों बन्ध के अलावा महाबन्ध और महावेध का भी अभ्यास करना चाहिए।

शक्ति योग की व्याख्या

मानव जगत् में शक्ति योग की उत्पत्ति कैसे हुई? यह एक गूढ़ विषय है। शक्ति योग समझने के लिए हम पाठकों को बता दें कि सर्व प्रथम भगवान् और प्रकृति के मिलन से प्राण की उत्पत्ति हुई। प्राण हमारे फुफ्फुस पर नियन्त्रण करता फुफ्फुस हृदय पर और हृदय रक्त पर और रक्त का प्रभाव मस्तिष्क पर मस्तिष्क मन पर मन ज्ञान का और ज्ञान शक्ति का आविष्कार करता है।

चलती हुयी दो कारों को एक साथ रोकना।

शक्ति हमें स्वर द्वारा प्राप्त होती है। स्वर की उपलब्धियों के लिए आत्म विश्वास की अपेक्षा रहती है। वायु का ही एक रूप है, जिसके बल पर अनेक प्रकार शक्ति प्राप्त की जाती है। अतः स्वर की शक्ति पर भी भरोसा करना चाहिए। स्वर साधना के बल पर मानवी शक्ति से परे भी काय

किया जा सकता है। साधना में असीम शक्ति भरी पड़ी है। रही बात स्वर शक्ति की तो मैं आपके सामने स्वर शक्ति का एक दृष्टान्त देता हूँ कि स्वर में कितनी शक्ति है।

एक बार विश्वामित्र जी अतिथि के रूप में गुरु वशिष्ठ के यहाँ पधारे। वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र का आतिथ्य सत्कार बड़े प्रेम पूर्वक राजसी ढंग से किया। वशिष्ठ जी की इस अनूठी सेवा से वे बहुत प्रसन्न हुए तथा इतने अल्प समय में इतनी अच्छी व्यवस्था का रहस्य जानना चाहा। इतना सुनकर अत्यन्त विनम्र होकर वशिष्ठ जी ने उनके बड़प्पन की सराहना करते हुए सामने खड़ी नन्दिनी गाय की ओर इशारा करते हुए कहा, इन्ही की कृपा से आपकी यथा संभव सेवा हो सकी है। विश्वामित्र इतना सुनकर आश्चर्य चकित रह गये। उनके मन में लोभ का जागरण हुआ और उन्होंने वशिष्ठ से प्रार्थना करते हुए नन्दिनी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की।

वशिष्ठ जी को अतिथि विश्वामित्र की यह माँग अच्छी नहीं लगी। उन्होंने गाय देने से इन्कार कर दिया। विश्वामित्र को यह बात अच्छी नहीं लगी। यह एक राजा का अपमान था। अतः विश्वामित्र ने अपनी सेना लेकर वशिष्ठ पर चढ़ाई कर दी और ताकत के बल पर नन्दिनी को प्राप्त करना चाहा।

वशिष्ठ जी अपने तपोबल से विश्वामित्र का प्रतिकार कर सकते थे किन्तु नन्दिनी स्वंय कम नहीं थी। वह जिस प्रकार अपने आश्रयदाता का प्रतिपालन करना जानती थी उसी प्रकार उसका अनिष्ट चाहने वाले का विनाश भी कर सकती थी। और वही हुआ भी। नन्दिनी की एक हुँकार से विश्वामित्र की सारी सेना का विनाश हो गया।

यह हुँकार और कुछ नहीं नन्दिनी के स्वर शक्ति का ही प्रभाव था।

जहाँ स्वरों का ज्ञान और उसकी शक्ति का वर्णन किया वहीं यह भी बताया कि जंगल में वन्य जीव–जन्तु भी स्वर शक्ति का ही प्रयोग करते हैं।

*

शक्ति योग पर योगिराज का स्व अनुभव

क्या कभी आप उस परम पिता परमात्मा के बारे में सोचते हैं कि वह अपने द्वारा पैदा किये गये हर जीव के प्रति कितना ध्यान रखता है। उसने देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक जीव को इतनी शक्ति प्रदान की है जो विकट परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेती है। चूँकि मछलियाँ जल में रहती हैं और जल के बिना एक मिनट भी नहीं रह सकतीं अतः परमात्मा ने उन्हें स्वाभाविक स्वर शक्ति प्रदान की है जिसके बल पर वे हिमालय अर्थात् बर्फ के घर में बर्फ की पर्तों के नीचे दबकर भी अपनी स्वर शक्ति से उसे पिघला देती हैं।

संसार के समस्त प्रकार के जीवों का जीवन स्वर पर आधारित है और सबकी स्वर क्षमता भिन्न–भिन्न है। मानव चूंकि ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है अतः बुद्धि विवेक और साधना की विशेष क्षमता भी प्राप्त है जिसके बल पर वह अन्य प्रणियों से आगे निकल जाता है।

मानव शरीर साधना का केन्द्र एवं मुक्ति का द्वार है जिसे पाकर जीव मुक्ति प्राप्त कर सकता है जो अन्य जीवों के लिए दुर्लभ कहा गया है। अन्य साधनाओं की अपेक्षा स्वर साधना सहज ग्राह्य और सद्यः फलदायिनी है।

अपनी पुस्तक की भूमिका में मैंने इस बात का संकेत दिया है कि मुझे अनेक साधु सन्त एवं ऋषि महात्मा मिले हैं, जिनके सम्पर्क में मुझे कुछ समय तक रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मैंने उनकी विलक्षण स्वर शक्ति की साधना की आश्चर्य जनक शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन किया है और उन्हीं की कृपा से शक्ति हमें प्राप्त हुई है। स्वर शक्ति के बल पर मानवी शक्ति से भी परे कार्य किया जा सकता है। साधना में असीम शक्ति है। यह सारी शक्ति चूंकि शरीर में ही प्रकट की जा सकती है अतः शरीर का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान बतलाया गया है। निरन्तर साधना के द्वारा दीन–हीन एवम् निर्बल मानव भी सूर्य के समान तेजस्वी एवं प्रकाश पुञ्ज बन सकता है। अतः यदि दृढ़ निश्चय किया जाय तो कोई भी कार्य किया

जा सकता है। सफलता न मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसके प्रमाण में ईश्वर की कृपा से मैं अपने को ही प्रस्तुत करता हूँ। आम आदमी की भांति मेरा शरीर भी पंच तत्वों से बना है। स्वर शक्ति–साधना के बल पर मुझसे जो कुछ हो जाता है, सामान्य प्राणी ही नहीं प्रबुद्ध वर्ग और अच्छे पहलवान् चकित रह जाते हैं। बचपन में मैंने सोचा स्वर्गीय राम मूर्ति जी की ही भांति कुछ आश्चर्य जनक कार्य करूँ। किन्तु उस समय मुझे स्वर अथवा शारीरिक शक्ति का कोई अनुभव नहीं था। यह एक उमंग मात्र थी जो रह रहकर मेरे मन को उकसाती थी। विंध्याचल की देवी हमारी कुल देवी हैं। अतः उनको स्मरण कर अपनी माता जी के चरण छूकर मैं बचपन में ही चमत्कार पूर्ण कार्यों को बिना किसी पूर्व अभ्यास के भारी भीड़ के बीच करके दिखा देता था। कार्य सम्पादन के बाद मुझे अपने कृत्यों पर स्वयं आश्चर्य होता था।

इन कार्य–क्रमों में वजनी नाल उठाना, बाल में बांधकर भारी भार उठाना, दाँत से कार खींचना, पीछे से बैलगाड़ी को रोक देना, आटा चक्की की चालू मशीन रोक देना, सीने पर पत्थर तोड़वाना वर्षा काल में देर तक पानी में डूबे रहना, बढ़ी हुई गंगा नदी को पार कर जाना या इसी प्रकार के बहुत से कार्य जो भी मन में आता करके दिखा देना।

दिन रात इसी प्रकार अनहोनी कर डालने की भावना मेरे मन में उठती और मै घर छोड़कर चारों ओर घूमता रहता। मुझे ऐसा लगता कि मेरे लिए कोई भी कार्य मुश्किल नहीं है और चूंकि मुझे कभी किसी कार्य में विफलता नहीं मिली अतः अपनी उमंग को रोकने का सवाल ही नहीं उठता था। पूर्वांचल के गाँवों में अहीरों के व्याहोत्सव में ब्याह के दूसरे दिन शारीरिक 'शक्ति' का प्रदर्शन उन दिनों खूब होता था। अतः अपने समीपस्थ गाँवों की बारात में भी मुझे जाना पड़ता था। आहार के मामले में भी मैं निरंकुश था। जब जो जी में आता खाने पीने का दावा कर बैठता था, एक बार में मैं बीस किलो दूध सेर दो सेर घी पी जाता था।

इस अवधि में मैंने भारत भ्रमण की भी योजना बनाई। मेरे लिए

भोजन आदि की कोई समस्या नहीं थी। जहाँ भी जाता मेरे पीछे भीड़ लग जाती। इसी दौरान ईश्वर की कृपा से मुझे कुछ महान योगियों और साधु महात्माओं के भी दर्शन हुए जिनकी संख्या और शरण में रहने कि अवधि अथवा उन स्थानों आदि का पता बताना आज मेरे लिए कठिन है, इनमें कुछ ऐसी भी महान विभूतियाँ हैं जिनके सम्पर्क में मैं शायद घण्टे भर ही रहा हूँ किन्तु उनकी स्मृति आज भी मुझे यथावत् है।

इन्हीं महात्माओं में एक वयोवृद्ध योगी ने अष्टभुजी की एकान्त पहाड़ी पर सर्वप्रथम मुझे स्वर शक्ति के बारे में बताया था। वे स्वंय घण्टों तक पद्मासन में बैठे साधना किया करते थे। उनके द्वारा बतायी गयी प्राणायाम विधि से मुझे बहुत लाभ हुआ। दो वर्ष पूरा होते–होते मैं तीन मिनट तक कुम्भक करने लगा। अब मुझे इस बात का स्पष्ट अनुभव होने लगा कि प्राणायाम क्रिया से मेरे कार्यक्रम सहज हो गये हैं और अब तक जो कुछ मैं करता था वह विशुद्ध रूप से हठ था।

फिर तो स्वर शक्ति साधना के प्रति मेरी गहरी आस्था होती गयी। तभी से मैंने अपनी सच्ची साधना शुरू की और प्रदर्शन का लक्ष्य जन कल्याण बनाया। इसके पूर्व तीन वर्षो में जो कुछ भी मिला था उससे कई गुना अधिक मैंने केवल एक वर्ष में प्राप्त कर लिया। स्वर की शक्ति को अब मैं पहचान सका था और मेरे सारे कार्यक्रम सहज हो गये थे।

गले में फाँसी लगाकर चार–चार कारों को रोकना मेरे लिए बच्चों का खेल जैसा लगता था। सड़क वाला रोलर जमीन में सोकर अपने ऊपर से वैसे ही पास कराने लगा जैसे कोई मन भर बोझ अपने ऊपर रख रहा हो। अब मैं नये सिर से देश में घूम–घूमकर इस पवित्र भावना से अपने कार्यक्रमों का प्रदर्शन करने लगा ताकि भारत की इस प्राचीन एवं लुप्त प्राप्य विद्या से सभी लाभान्वित हों। इस बीच देश के प्रबुद्ध विद्वान, राजनीतिज्ञ, अधिकारी व्यापारी आदि मेरे बारे में परिचित हो गये थे और अखबारों में मेरे समाचार एवं चित्र को देखकर मुझ से मिलने के लिए उत्सुक होने लगे।।

प्रख्यात विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्द उन दिनों राजस्थान के गवर्नर पद पर आसीन थे। उन्होंने पत्र भेजकर मुझे अपने पास बुलाया और अपने पास महीनों रखकर मेरे कार्यक्रमों का अनेक स्थानों पर प्रदर्शन कराया। उनके निर्देशन में मुझे अन्य प्रदेशों में भी सम्मान पूर्वक जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भारतीय संस्कृति एवं कला के अनन्य उपासक श्रद्धेय सम्पूर्णानन्द द्वारा मुझे अपार स्नेंह एवं सम्मान प्राप्त हुआ जिसका वर्णन शब्दों मे नहीं किया जा सकता। चोटी के नेताओं एवं डा० के बीच जब मैनें नाड़ी की गति रोक दी तो सम्पूर्णानन्द जी भाव विभोर हो उठे। कार्यक्रम के अन्त में उन्होंने स्वयं उठकर मुझे माला पहनायी और आधे घण्टे तक धारा प्रवाह बोलते रहे। निःसन्देह वे अद्भुत विद्वान् थे।

प्रधानमंत्री के पद पर सुशोभित सात्विकता की मूर्ति स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री ने मुझे दिल्ली बुलवाकर मेरा कार्यक्रम देखना चाहा। सारी व्यवस्था के बाद जब मैं योग–क्रिया का प्रदर्शन करने कि लिए आगे खड़ा हुआ तो शास्त्री जी की आँखे भर आयीं। वे अपने आसन से उठकर मेरे पास आये और संयत स्वर में कहा मैं जानता हूँ कि तुम भारी से भारी कार्य कर सकते हो किन्तु यह मेरी कमजोरी है कि मैं ऐसा खतरनाक प्रदर्शन अपनी आँखों के सामने नहीं देख सकता। अतः यह कार्य तुम लघु रूप में हमें दिखा दो।

बिना किसी प्रतिवाद के मैंने उनके आदेश का पालन किया। कार्यक्रम के बाद वे मुझे अपने साथ लेकर अपने आवास पर गये। शाम को भोजन के बाद उन्होंने विनोद में कहा 'जानते हो मैंने तुम्हें खतरनाक कार्यक्रम क्यों नहीं करने दिया? तुम मीरजापुरी हो और वहीं मेरा ननिहाल है। इसी मोह के कारण तुम्हारी प्रतिभा जानकर भी मैंने वैसा नहीं करने दिया।

डा० सम्पूर्णानन्द, लाल बहादुर शास्त्री तथा ऐसे ही हजारों लोग इन उपलब्धियों को देखकर चकित होते रहे। आज इस पुस्तक के माध्यम से

मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने जो कुछ किया है वह शक्ति स्वर साधना एवं महान विभूतियों की अहेतुकी कृपा का प्रतिफल है।

कृपालु एवं महान् साधक महात्माओं द्वारा बताये गये रास्ते पर चलकर मुझे इतनी शक्ति प्राप्त हुई कि सूर्य स्वर द्वारा भारबोझिल ट्रकों पर भारी से भारी सामान लादने पर भी कोई परेशानी नहीं होती उसी प्रकार साधना द्वारा शरीर को मजबूत बनाकर कुम्भक के माध्यम से हवा भर लेने से उस पर बाहरी शक्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दो गाड़ियों के बीच बैठकर उन्हें पाँव से रोक देना, हाथी के साथ रस्सा–कसी करना, सीने पर रोलर तथा पत्थर की चट्टानों को घन द्वारा तोड़वाना, रेलवे इन्जन रोक देना तथा समाधि आदि की सिद्धि रेचक शक्ति योग के माध्यम से की जा सकती है।

हृदय स्तंभन–हृदय स्तंभन एक कठिन क्रिया है। श्वांस का पर्याप्त अभ्यास होने पर हृदय स्तंभन क्रिया का प्रयास करना चाहिए। सामान्य हठयोगी के लिए यह क्रिया वर्जित है। हृदय गति को रोकना–इसके लिए चन्द्र स्वर का प्रयोग किया जाता है। मन को एकाग्र करने के लिए निश्चयात्मक बुद्धि से चन्द्र स्वर द्वारा कुम्भक कर हृदय को रूकने का आदेश देते जायँ। इस क्रिया के निरन्तर अभ्यास से कुछ दिनों बाद हृदय स्तंभित होने लगता है।

लाभः–जन्म काल से लेकर जीवन पर्यन्त हृदय को कभी भी विश्राम नहीं मिलता असंतुलित आहार–बिहार, मानसिक चिन्ताओं एवम् अन्य तमाम घटनाओं का हृदय पर प्रभाव पड़ने से उनकी गति में विकृति आ जाने से नाना प्रकार के रोगों का जन्म होता है यही कारण है कि–संप्रति सम्पूर्ण संसार में ह्वदय रोग बढ़ता जा रहा है। इसीलिए जब वह थक हारकर अपना कार्य बन्द कर देता है तब प्राणी की असमय ही मृत्यु हो जाती है।

हृदय स्तम्भन–क्रिया से कुछ क्षण के लिए हृदय को विश्राम मिल जाता है जिससे उसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है तथा मनोबल की वृद्धि होती है। आज के आधुनिक चिकित्सा–विज्ञान के अनुसार तीन मि० तक हृदय

गति रूक जाने से प्राणी मृत घोषित कर दिया जाता है किन्तु योग साधना में ऐसी कोई बाध्यता नहीं है। विज्ञान हृदय परिवर्तन में सफल नहीं हो पाता किन्तु साधक के लिए वह भी संभव है। परकाय प्रवेश विद्या से साधक प्राण दूसरे शरीर में डालकर शरीर परिवर्तन तक कर सकता है।

हृदय स्तम्भन क्रिया से योगी अपनी हृदय गति रोककर सैकड़ों वर्ष तक युवा की भांति जीवन व्यतीत करते थे।

शक्ति योग द्वारा सीने पर भार वहन करना—सीने पर थोड़ा सा भार भी असह्य हो जाता है। गहरी नींद में बच्चा भी यदि सीने पर हाथ—पाँव फेंक देता है तो आँखें खुल जाती हैं। थोड़ा भार भी सीने पर भारी लगता है। इसलिए सीने पर हाथ रखकर सोना वर्जित है इससे सीने की धड़कन एवं फेफड़े आदि की कार्य—प्रणाली में बाधा पड़ती है। इस व्यवधान के कारण सीने पर हाथ रखकर सोने वाले को खराब सपने दिखाई देते हैं।

सीने पर झटके एवम् धक्के से बहुधा व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है। एक संगीतज्ञ किसी कार्यक्रम में अलाप लेकर खाली ही हुआ था कि किसी प्रशंसक ने उसके सीने पर थपकी देकर उसकी तारीफ की और उसी मामूली झटके से संगीतज्ञ समाप्त हो गया।

किन्तु स्वर साधना के बल पर उसी नाजुक सीने पर भार बोझिल ट्रक तथा और भी वजनी भार वहन किया जा सकता है। इसके लिए समतल भूमि पर लेटकर सूर्य स्वर द्वारा अन्तःकुम्भक साधना चाहिए और उसके बाद तीव्र मनोबल द्वारा सीने में प्राण शक्ति भरकर ऐसा दृढ़ संकल्प भावना बनानी चाहिए कि हमारी छाती वज्र से भी कठोर हो गयी है अतः अब इस पर बाह्य आघात का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

इस क्रिया से वह स्थान इतना मजबूत हो जाता है कि उस पर किसी भी बाह्य क्रिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ट्रक आदि ही नहीं ऐसे समय में कोई हथियार भी उसे काटने पीटने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

इस क्रिया से शरीर के बिना किसी भी अंग को अथवा संपूर्ण शरीर को एक साथ मजबूत बनाया जा सकता है। इस शक्ति पर अविश्वास करने

वालों को वाष्प की उस प्रचण्ड शक्ति का अनुभव करना चाहिए जो वायु का ही एक रूप है, जिसके बल पर अनेक प्रकार के शक्तिशाली इन्जन चलाये जाते हैं। वैज्ञानिकों ने गैस को संचित कर उससे पर्याप्त शक्ति प्राप्त की है। अतः स्वर की शक्ति पर भी भरोसा करना चाहिए। ऐसा विश्वास जागृत हुए बिना उस क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती। स्वर शक्ति की उपलब्धियों के लिए आत्मविश्वास एवं मनोबल की अपेक्षा रहती है।

शक्ति योग द्वारा रेल इन्जन रोकना

रेल इन्जन अन्य तमाम इन्जनों से शक्तिशाली और अत्यन्त भारयुक्त होता है जिसके चलने से धरती दलकने लगती है। अगर इसे पटरी से उतार कर जमीन पर रख दिया जाय तो सैकड़ों आदमी उसे हिला भी नहीं सकते। किन्तु स्वर साधना के बल पर ऐसे इंजन को भी रोका जा सकता है।
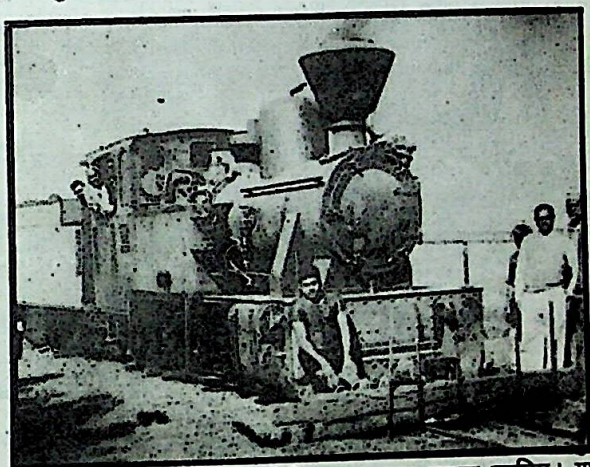
इसके लिए भी उपरोक्त विधि का पालन करना चाहिए। शक्ति सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के लिए सूर्य स्वर में कुम्भक करना अनिवार्य होता है। क्योंकि सूर्य स्वर से, जैसा कि हमने ऊपर कहा है, शरीर में शक्ति तथा तेजस्विता का संचार होता है। स्वर क्रिया एक ऐसी विलक्षण क्रिया है

जिसको साधने से मन काफी हद तक सध जाता है और कहते भी हैं—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

शक्ति योग द्वारा हाथी के साथ रस्सा—कसी

हमारी धार्मिक परम्परा के अनुसार दसों दिशाओं में खड़े होकर हाथी इस पृथ्वी को सम्हाले हुए हैं पशुओं में हाथी सर्वाधिक बली माना जाता है। वजन, आकार और शक्ति के अनुसार उसकी कार्यक्षमता भी कम नहीं होती। युद्धों में, शिकारों में, बारातों में तथा दुर्गम यात्राओं में हाथी का उपयोग निरापद माना गया है। सुरक्षा एवं मर्यादा की दृष्टि से राजे—महाराजे हाथी पर सवारी किया करते थे। जंगलों में जहाँ ट्रके आदि नहीं पहुँच सकतीं, करानों का जाना जहाँ असंभव है, मोटे—मोटे विशाल लकड़ी के कुन्दे ढोने का कार्य हाथी ही करते हैं।
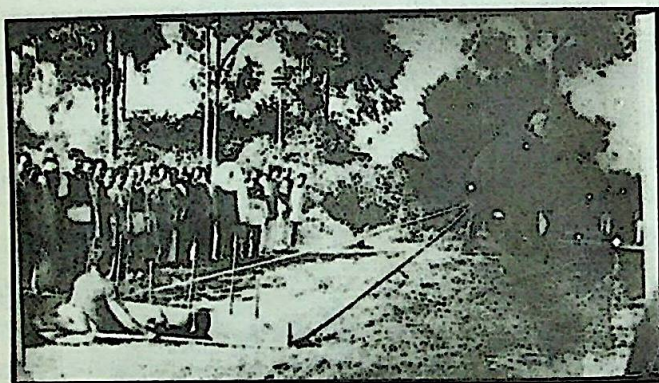
सामान्य प्राणी हाथी को पाल नहीं सकता। हाथी का उठाना संभव नहीं है। इसलिए वह जिस स्थान पर मरता है वहीं गड्ढा खोद कर दफना दिया जाता है। ऐसे शक्तिशाली एवं विशाल हाथी के साथ एक अदने आदमी द्वारा रस्सा—कसी कराने की बात उपहास ही है किन्तु स्वर साधना कर वही आदमी हाथी को पराजित कर देता है।

इसमें भी सूर्य स्वर द्वारा कुम्भक करने के साथ ही यह विचार स्थिर करना चाहिए कि अब मैं अंगद के पांव की तरह ही हाथी के विरुद्ध धरती पर जम गया हूँ। अतः लाख प्रयत्न करने के बाद भी हाथी मुझे नहीं खींच पायेगा। यह विचार इतना स्थिर हो जाना चाहिये कि उस समय किसी प्रकार के अन्य विचार मन में न आ सकें।

शक्ति योग द्वारा जब मैंने २०० हार्सपावर चालित जेट नौक रोक दी

हिमालय की उन्नत एवरेस्ट चोटी का द्वितीय विजेता एडमण्ड हिलारी ने सन् १६७७ में समुद्र से आकाश तक की यात्रा का अभियान आरम्भ कर विशेष इंजीनियरों एवं कारीगरों की मदद से निर्मित अपनी २०० हार्सपावर की मजबूत एवं तीव्रगामी जेट नौका से बंगाल की खाड़ी से हिमालय के उस शिखर पर पहुँचने के लिए निकल पड़ा था जिसे गोमुख कहते हैं। यह भारत का वह महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल एवं श्रद्धा का केन्द्र स्थल है जहाँ से पापनाशिनी गंगा निकल कर पूरे भारत को आलोकित करती हैं।

यद्यपि उसकी यह यात्रा पूरित नहीं मानी जायेगी क्योंकि वह अपनी नौका लेकर उस ऊँचाई पर नहीं पहुँच सका जहाँ से गंगा विभिन्न स्त्रोतों के माध्यम से नीचे उतरती हैं, किन्तु उसकी यात्रा संसार के लिए महत्वपूर्ण यात्रा मानी जायेगी जिसका पूरा वृतान्त उसने अपनी प्रकाशित पुस्तक में दिया है। यह ग्रन्थ आधुनिक भारत के गंगा तटीय क्षेत्रों का ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक सर्वेक्षण है जिससे उसके श्रम, उसकी क्षमता एवं अध्ययन प्रियता का पता चलता है।

पाठकों को स्मरण होगा कि उन दिनों समाचार पत्रों में हिलेरी की यात्रा के सचित्र समाचार बड़ी रोचकता से छपते थे और सारे देश की दृष्टि उस पर लगी हुई थी।

वह अपनी यात्रा के दौरान महत्वपूर्ण स्थलों पर तब तक रुका रहता था जब तक कि वहाँ की पूरी जानकारी नहीं मिल जाती थी। वाराणसी में तीन दिनों तक ठहरने के बाद जब वह मीरजापुर के लिए रवाना हुआ,

स्थानीय अधिकारियों ने उससे परिचय कराने के लिए मुझे भी आमंत्रित किया।

परिचय के दौरान जब उसे मालूम हुआ कि मैं हठयोग के द्वारा रेल इंजन रोक देता हूँ, उसने मुझे अपने बोट पर बैठाया और तीव्र गति एवं शक्ति दिखाने के लिये उसे स्टार्ट कर दिया, स्टार्ट करने से नौका जैसे पानी से ऊपर उड़ रही हो, इतनी तीव्रता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कुछ ही मिनटों में कई मील का चक्कर लगााकर पुनः नौका को वापस लाकर खड़ी कर दी। मैंने देखा कि समूची गंगा का जल समुद्र की लहरों की तरह डोल रहा था।

हिलेरी ने मुस्कराते हुए कहा, क्या मेरी नौका आप रोक सकते हैं? मुझे भीतर ही भीतर एक बात मथने लगी थी, यह आदमी गंगा और भारत दोनों का अनादर कर रहा है। मैंने छूटते ही कहा, ऐसी कौन सी बात है। भारत योगियों का देश है, यहाँ वर्षा और धूप तक को रोकने वाले हैं, इस नौका में क्या दम है।

किन्तु हिलेरी को विश्वास नहीं हो रहा था। बहरहाल उसकी जेट नौका रोकने का समय निर्धारित हो गया और गंगा तट पर हजारों दर्शक जमा हो गये। वह प्रातःकाल का लुभावना समय था। सूर्य अपनीं अरुणिम आभा से गंगा की लहरों से खेल रहा था। मीरजापुर के जिलाधिकारी श्री प्यारेमोहन अग्रवाल, मीरजापुर के अनेक प्रतिष्ठित लोग तथा अन्य अधिकारी गण हिलेरी सहित गंगा तट पर खड़े उस जीप की प्रतीक्षा कर रहे थे जो मुझे लेने के लिए मेरे घर भेजी गयी थी।

मेरे पहुँचते ही लोग उत्सुक हो उठे। एक मोटे नायलोन के रस्से में जेट नौका बांधी गयी और तीर पर मोटे–मोटे कई लोहे के राड लगाकर ठोकर बनाया गया। मैंने सूर्य को प्रणाम कर गंगा जल का आचमन किया और संयत होकर सूर्य द्वारा कुम्भक करने के सा़थ ही रस्से को कमर से बांधकर हिलारी से नौका चलाने का निर्देश दिया।

नौका स्टार्ट हो, इससे पहले ही मैंने तीव्र मनोबल से अपनी कमर

एवं पांवों को वज्रवत बना लिया था। फिर क्या था, नौका के सारे इंजन फुल पावर में शोर कर उठे, नौका अपने स्वभाव के अनुसार उछली और रस्से तथा उसके तनाव तक की दूरी पूरी करने के बाद वह कुछ पीछे चली आई। इंजन के जोर से वह बार–बार आगे बढ़ती और थक कर पुनः पीछे चली आती। यह क्रम कुछ देर तक चलते रहने के साथ ही दर्शकों की खुशी एवं तालियों की गड़गड़ाहट से तट गूंज उठा। हमारे अधिकारियों ने मेरा बड़ा सम्मान किया क्योंकि उनको पूरा–पूरा विश्वास नहीं था। हिलेरी ने भी मुझसे हाथ मिलाया और भारतीय हठयोग की शक्ति की सराहना की। अपनी पुस्तक में भी उसने इसकी चर्चा की है।

हठ योगी राजबली मिश्र एडमेन्ड हिलेरी के साथ (वोट रोकने के बाद)

साधना में शक्ति है

स्वर साधना की आश्चर्यजनक उपलब्धियों के प्रति उसके चमत्कार पूर्ण परिणाम देखकर भी सहसा लोग विश्वास नहीं करते। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस साधना से शारीरिक शक्ति मानसिक उन्नयन एवं अनिर्वचनीय आध्यात्मिक सुख प्राप्त किया जा सकता हैं किन्तु खेद की बात है कि लोग आज भी इसे जादू टोना ही मानते हैं। संपन्न लोग इसे मनोरंजन का साधन समझते हैं। इसीलिए योगियों के प्रति उनके मन में कोई श्रद्धा नहीं होती।

धन के मद में लोग शरीर की स्वाभाविक माँगों तक का ध्यान नहीं रखते और उनकी आंख तब खुलती है जब वे अपना सब कुछ खो चुके होते हैं। इस पुस्तक में मैंने इस बात की अनेक बार चर्चा ही है कि उत्तम स्वास्थ्य के बिना जीवन नरक के समान हो जाता है। सब कुछ प्राप्त करने के बाद भी यदि स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा तो उससे कुछ भी लाभ नहीं। वे गरीब बल्कि अच्छे हैं, जो आधा पेट खाकर भी चैन की नींद सोते हैं।

सच कहा जाय तो इसी पुनीत भावना से मैंने अपनी साधनाओं का प्रदर्शन आरम्भ किया था। आज भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि भारत का हर प्राणी स्वर साधना एवं योगाभ्यास के माध्यम से उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर अपने परिवार और राष्ट्र की सेवा करता हुआ देश की उस गरिमा की स्थापना करे जो हमारे यहां वैदिक काल से चली आ रही थी।

शास्त्रों पुराणों में कलिकाल की पतनावस्था का पर्याप्त वर्णन मिलता है किन्तु इसके बावजूद क्या कारण है कि कुछ लोग पुरातन परम्परा से मिल जाते हैं। शक्तिशाली, बुद्धिमान, दीर्घजीवी आदि अनेक गुणों से संम्पन्न व्यक्तियों की कमी अवश्य है किन्तु उनका पूरी तरह सफाया नहीं हो गया है।

बंगाल के महान सन्त लोकनाथ ब्रह्मचारी ने १३६ वर्ष की उम्र में (सन् १४४८ में) शरीर त्याग किया था। आन्ध्र प्रदेश के निवासी प्रख्यात सन्त

तैलंग स्वामी ने ७८ वर्ष की आयु में संन्यास लिया, ८८ वर्ष की उम्र में भी इनमें बुढ़ाई के कोई लक्षण नहीं थे। आपने २८० वर्ष की आयु में काशी में प्राण त्याग किया था। हिमालय तथा विन्ध्य पहाड़ियों पर आज भी अनेक योगी साधना के बल पर सैकड़ों वर्ष से जीवित है जिनका मैंने स्वंय दर्शन किया है।

जन–जीवन से सर्वाधिक परिचित देवरिया के प्रख्यात संत देवरहा बाबा की उम्र कम नहीं था किन्तु वे अन्त तक पूर्ण स्वस्थ्य थे। कुछ लोग उन्हें ३०० वर्ष का तो कुछ लोग २०० वर्ष का बताते हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे सौ वर्ष से काफी अधिक उम्र के थे और पूरी तरह स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे।

अतः इसमें भी सन्देह नहीं है कि यदि संयमपूर्वक रहकर साधना का सहारा लिया जाय तो दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है।

इसी पवित्र भावना से अपने श्रद्धेय गुरुजनों एवं सन्तों की प्रेरणा से मैं विगत चार दशकों से देश विदेश के कोने में जाकर यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन करता आ रहा हूँ ताकि इस साधना पद्धति की अहमियत को लोग समझें। सामाजिक एवं युग की विकृतियों के घेरे को तोड़कर लोग इस तथ्य को समझें कि यह मानव शरीर फूल की पांखुड़ी मात्र नहीं जिसे मामूली ताप झुलसा दे। यह शरीर पत्थर से भी अधिक कठोर और तमाम आघातों को सहन कर सकता है।

जैसा कि हमने इस पुस्तक की भूमिका में कहा है, हमारे महान ऋषियों–योगाचार्यों ने सात्विकता से जीवन व्यतीत कर साधना के बल पर पर्याप्त शक्ति अर्जित की। प्राचीन काल में सामान्य प्राणी जब पशु–पक्षियों को मारकर उनके माँस से अपना पेट भरता था, हमारे योगी उनके हाव भाव का अध्ययन कर आसनों को जन्म दे रहे थे।

प्रकृति के निकट रहकर उसमें घुलमिल जाने के ही कारण जंगली पशु सर्वदा स्वस्थ एवं स्फूर्त रहते हैं। उन्हें रुग्ण नहीं देखा जाता किन्तु आदमी, जिसने अपने लिए तमाम सुख–साधन एकत्र कर लिए हैं वह

दवाओं के बल पर जीवित रहता है।

रवीन्द्र बाबू की एक उक्ति का बरबस स्मरण हो जाता है। उन्होंने लिखा है—जब वर्षा होती है, हम छतरी लगा लेते हैं, धूप होते ही हम छाया में चले जाते हैं, हवा चलते ही हम अपने दरवाजे खिड़कियाँ बन्द कर लेते हैं। इस प्रकार प्रकृति से सर्वदा दूर भागते रहते हैं फिर हम स्वस्थ कैसे रह सकते हैं।

प्रकृति और धरती के इस तथ्य को जिसने भी समझ लिया है वही इस धरती पर जीने का अधिकारी है। महात्मा गांधी ने इस तथ्य को समझा था। वे सदैव मिट्टी के निकट रहे और अपने प्रियजनों तक की चिकित्सा में प्रकृति से सहयोग लिया करते थे।

स्वर अथवा योग साधना की पहली शर्त है कि साधक धरती के निकट आये। वह उस प्रकृति को समझे जिसने इस मनोरम संसार की रचना की है। जिसके जन्म—विकास और विनाश तीनों रूपों में कोई भेद नहीं है।

इस प्रकृति के विरुद्ध हम जितना ही सुख की आशा रखेंगे हमें उतना ही दुःख भोगना पड़ेगा। शीत—ताप नियंत्रित कक्ष में रहने वालों को पता नहीं है कि यह शरीर स्वयं शीत—ताप नियंत्रित है। आवश्यकता पड़ने पर प्रकृति इसे सब कुछ सहने लायक बना देती है। इसके विपरीत यदि हम इसे विशेष आराम देने का प्रयास करेंगे तो यह अपना स्वाभाविक गुण खो बैठेगा, क्योंकि शरीर अभ्यासों का दास है।

इसलिए हमारे योगियों ने अभ्यास को महत्व दिया है। गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को साधना में सफलता की कुंजी के रूप में अभ्यास को ही बताया है—अभ्यास योगेन कौन्तेय—आदि आदि। अन्य धर्मग्रन्थों में भी अभ्यास की महिमा का एक स्वर से गुणगान है।

सन्त कवियों ने भी उसी अभ्यास की चर्चा की है—

करत करत अभ्यास ते जडमति होत सुजान।

किसी पाठ को बार—बार दोहराना ही अभ्यास है। यदि आपको धूप

से कष्ट होता है तो छाया में मत भागिये बल्कि प्रतिदिन कुछ समय बढ़ाकर धूप का सेवन करें। एक दिन वह आयेगा जब आप कड़ी से कड़ी धूप सहन करने लगेंगे। शीत में भी इसी प्रकार निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।

योगी और साधक भी तो यही करता है। स्वर योग भी साधना के बल पर साधा जा सकता है। मेरा अपना स्वयं का अनुभव भी यही है और मेरे निर्देशन में सैकड़ों व्यक्तियों ने अभ्यास के प्रति ऐसा ही अनुभव किया है।

मुझे जहाँ तक स्मरण है कि बिना किसी अभ्यास के एक बार मैंने तीन मिनट तक श्वांस को रोक रखा था किन्तु यह प्राणायाम नहीं था; क्योंकि उन दिनों प्राणायाम की हमें कोई जानकारी नहीं थी। फिर पूरक, कुम्भक और रेचक की विधि को मैं क्या जानता। उन दिनों मैं मात्र इतना जानता था कि श्वांस को देर तक रोकने से शक्ति बढ़ती है।

इसी शक्ति बढ़ने के लोभ से मैं पानी में डुबकी लगाकर, रास्ते में नाक दबाकर या सोते–बैठते श्वाँस रोकने का प्रयास करता। किन्तु प्राणायाम की सही जानकारी मिलने के बाद मुझे लगा कि साधना के लिए निर्दिष्ट मार्ग से चलना आवश्यक है। यदि विधिविधान से स्वर साधना का सुअवसर न प्राप्त हुआ होता तो मैं आज जहाँ हूँ वहाँ तक पहुँचना सभंव नहीं था।

हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में एवं इतिहास में अनेक वीरों का वर्णन मिलता है। महाभारत कालीन वीरों को ही देखिए–दुःशासन की भुजाओं में साठ हजार हाथियों का बल था। भीम को शारीरिक ताकत अपार थी, अर्जुन का युद्ध में कोई जोड़ा नहीं था। इस काल के वीरों की शक्ति क्षमता की महाभारत में पर्याप्त चर्चा मिलती है। उस काल के भी अनेक वीरों ने उपासना एवं साधना के बल पर शक्ति अर्जित की थी।

महाभारत काल से भी पहले त्रेतायुग में शक्ति के साधकों की कमी नहीं थी। रावण इतना ताकतवर था कि उसके चलने से पृथ्वी हिलती थी। उसने युद्ध क्षेत्र में भगवान् राम तक के छक्के छुड़ा दिये। रावण ने अपनी

साधना के बल पर भगवान् शंकर तक को प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त किया और देवताओं आदि को अपने अधिकार में कर लिया। किन्तु चूंकि उसने अपनी शक्ति का प्रयोग अनुचित ढंग से किया इसलिए शीघ्र ही उसे पराभव का मुँह देखना पड़ा।

साधना द्वारा प्राप्त शक्ति का प्रयोग आत्म निर्माण और ब्रह्म दर्शन के लिए प्राणिमात्र के कल्याण के लिए किया गया तभी वह फलीभूत होती है किन्तु यदि उसका उपयोग कामनाओं की सिद्धि के लिए किया गया तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

इसलिए साधक को सदैव सात्विक प्रवृत्ति एवं आत्मशुद्धि का उपदेश दिया गया है ताकि सिद्धावस्था में वह निरंकुश न हो जाय। कुम्भक की साधना जब परिपक्वावस्था को प्राप्त करती है तो साधक को वाक् शक्ति की प्राप्ति हो जाती है। उसे दिव्य श्रवण एवं दिव्य दर्शन की अनुभूति होती है।। ऐसे समय में यदि उसकी बुद्धि सात्विक न रहे और वह निरंकुश हो जाय तो इसका परिणाम कभी–कभी भयावह हो जाता है।

तांत्रिकों में यह दुर्गुण अधिक पाया जाता है। तामसी आचरण होने के नाते बहुधा वे अपनी उपलब्धि का नाजायज लाभ उठाने लगते है जिससे उनकी साधना खण्डित होकर रह जाती है। इसी लिए योग साधक को हमेशा सतर्क रहना चाहिए। साधना की उपलब्धि का सदुपयोग करने के लिए साधक को सदा तत्पर रहना चाहिए। इस बात को कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी मंजिल मुक्ति है, सांसारिक सुख–वैभव की उपलब्धि नहीं। इस शक्ति का उपयोग जिसने भी कामनाओं की तृप्ति के लिए करना चाहा, वह आगे नहीं जा सका।

तपश्चर्या में तपस्वी को प्रलोभनों से बचने के लिए सदैव आगाह किया गया है। अप्सराओं आदि के प्रलोभनों से बचने वाले तपस्वी ही अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके हैं। साधक का यह परम कर्तव्य होता है कि वह अपनी उपलब्धियों की न तो अकारण चर्चा करें और न ही उसका कभी दुरुपयोग ही होने दें।

इस संदर्भ में मैं अपना ही एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। मीरजापुर में एडमण्ड हिलारी की जब मैंने जेट नौका रोक दी तो वह बहुत प्रभावित हुआ और यह मानकर—मैं सिद्ध महात्मा हूँ, उसने काफी देर बाद अपने यात्रा अभियान में सफलता के लिए मुझ से आशीर्वाद मांगा।

कुछ क्षण मौन रहकर मैंने अपने स्वर को देखा और विचार किया। उसकी भावना में मुझे वह विनम्रता नहीं मिली जो एक याचक में होनी चाहिए। फिर मुझे लगा कि यह व्यक्ति भारत की पुनीत नदी गंगा को सागर से हिमालय तक यात्रा करने नहीं बल्कि उस पर विजय प्राप्त करने की भावना से निकल पड़ा है। वह हमारी संस्कृति और परम्पराओं से पूरी तरह अपरिचित है। जिस देवसरि से हमारी तमाम सांस्कृतिक और धार्मिक भावनायें एवं आस्थाएँ जुड़ी हुई हैं, यह उन सबको रौंदने की आकांक्षा रखता है। जिस यात्रा के प्रति उसे भारी अहंकार है और पूरी करने के लिए २०० हार्स पावर की तेज तर्रार नाव ले रखी है, उस पुनीत यात्रा को अनेक सन्तों ने बिना किसी प्रकार के आडबर के पैदल चलकर पूरी की है। उन्होंने कभी भी गंगा जी में पांव नहीं रखा है बल्कि उस पुनीत जल को मस्तक पर चढ़ाया।

भारत ने गंगा को देवी और माँ के रूप में माना है जिन्होंने भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर महाराज सगर के साठ हजार पुत्रों को सद्‌गदि प्रदान करने के लिए स्वर्ग से धरती पर आने की कृपा की। गंगा जी के जल को हमने अमृत माना है। ये तमाम बातें मेरे मस्तिष्क में घूमने लगीं।

मैंने आंखें खोलकर ध्यान से देखा, हिलेरी सामने खड़ा था। मैंने संयत होकर कहा, मैं तुम्हें ऐसा आशीर्वाद नहीं दे सकता क्योंकि तुमने माँ के चरणों से अपनी यात्रा अवश्य शुरू की है और कटि प्रदेश तक आ भी गये हो। पुत्रवत भाव रखकर तुम मां गंगा के वक्ष तक भी जा सकते हो किन्तु उनके मस्तक और सिर पर नहीं पहुँच सकते।'

मैं यह देख रहा था कि हिलारी सहित वहाँ उपस्थित अनेक लोगों को मेरी बात अच्छी नहीं लगी किन्तु मैं विवश था। किन्हीं प्रेरणाओं के

आधार पर मैं बोल रहा था।

और हुआ भी वही। एडमण्ड हिलारी माँ गंगा के मस्तक पर नहीं जा सका। दो सौ क्या दो हजार या दो लाख हार्स पावर की नाव भी वहाँ नहीं पहुँच सकती। वहाँ तो कोई भक्त ही जा सकता है।

मैं कोई सन्त महात्मा या महान साधक नहीं हूँ किन्तु जो बातें मुझे भारतीय आदर्शों के विरुद्ध लगती हैं, मुझसे उनका समर्थन नहीं हो पाता। अपने धर्मग्रन्थों और महान् विभूतियों के प्रति मेरी घोर आस्था है। मैं इस बात को मानता हूँ कि सच्चा सन्त ईश्वरीय विधान तक को बदल देता है क्योंकि साधना के बल पर वह पूरी तरह ईश्वर को समर्पित हो जाता है। ईश्वर को विवश होकर उसके लिए अपना विधान बदलना पड़ता है।
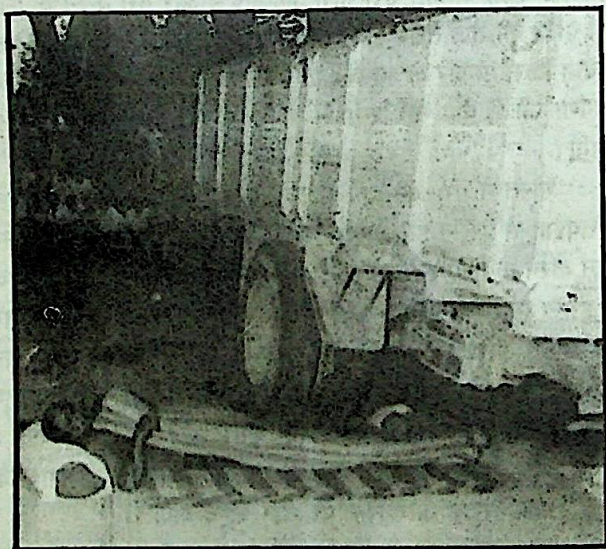
मरी ट्रक सीने से उतारना।

बम्बई में आयोजित एक कार्यक्रम में गले में फांसी लगाकर दिनांक २६.१०.६० को श्री श्रीप्रकाश (राज्यपाल) महाराष्ट्र के सामने अपना प्रदर्शन करते हुए योगिराज।

कोलम्बिया में अपने प्रशंसकों के बीच योगी-राज

ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन, लन्दन के टेलीविजन विभाग ने नवम्बर ७३ में उनकी यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन कराकर उक्त पत्र के माध्यम से योगिराज के प्रति आभार प्रदर्शित किया।

B B C tv

BRITISH BROADCASTING CORPORATION
TELEVISION CENTRE WOOD LANE LONDON W12 7RJ
TELEPHONE 01-743 8000 CABLES TELECASTS LONDON PS4
TELEGRAMS TELECASTS LONDON TELEX TELEX 22182

Nov. 30th. '73

Dear Prof. Raj Bali Misra -

Thank you for your contribution to the film I am making on Hatha Yoga.

It was a splendid occasion and I am deeply grateful for your assistance.

Many thanks -

Hugh B[illegible]

स्व० लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री के साथ भेंट करते हुए योगी राज उनके निवास स्थान पर (३० मार्च १९६५)

उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री विश्वनाथ दास ने योगिराज के कार्यक्रमों का प्रदर्शन कराकर उक्त प्रमाण पत्र प्रदान किया।

GOVERNOR
UTTAR PRADESH

GOVERNOR'S CAMP
UTTAR PRADESH

August 7,19[illegible]

Sri Raj Bali Misra gave a demonstration of Yogic Physical Feats at Raj Bhavan, Lucknow, on August 2,1952, and I was much impressed by his skill and attainments. Sri Misra is a well built person and the feat of the passing of a loaded truck over his body with broken glass pieces underneath was most striking. Equally so are his other feats.

I wish Sri Misra a long and active life and success in his mission.

Biswanath Das

(BISWANATH DAS)
GOVERNOR,U.P.

संम्पूर्णानन्द

RAJ BHAVAN
JAIPUR

Dated Sept. [illegible]

Shri Raj Bali Misra performed so wonderful feats at the Raj Bhavan, Jaipur before a large audience. He allowed a big fully loaded truck to go over his body as he lay on his back over pieces of broken glass. Another wonderful feat was bending a think iron rod by pressing the sharp point of a bayonet affixed to it against his eyes. No less marvellous was his success in stopping two jeeps on full gear and matching his strength against a full-grown elephant in a tug-of-war. Shri Misra explained that he has developed the capacity for these remarkable feats through Yogic exercises and control of breath. Such efforts deserve encouragement by public institutions. Shri Misra requires wider publicity and financial help so that he may be enabled to realise his desire to establish an institution where he can impart instruction in his system of physical training.

I wish Shri Misra every success in his mission.

Sampurnanand

(Sampurnanand)
Governor, Rajasthan

राजस्थान क गर्वनर पद पर आसीन
प्रख्यांत विद्वान एवं राजनेता डा०
सम्पूर्णानन्द द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र

जापान में (टोक्यो टेलीविजन कम्पनी के प्रेसिडेन्ट श्री बाजो तोसीकाने व अपने बड़े पुत्र श्री ईश्वर प्रसाद मिश्र के साथ।
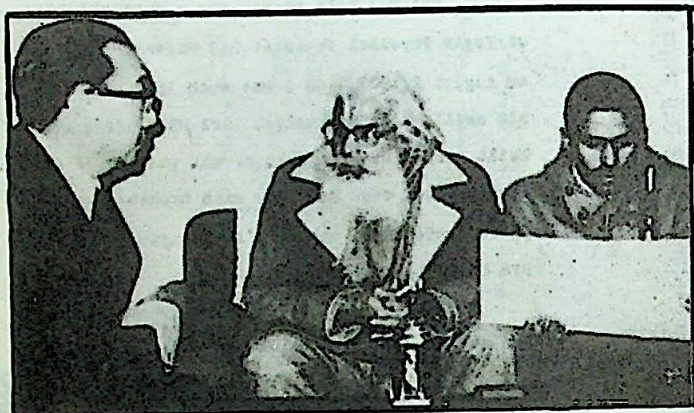
जीप को बाल में बाँध कर खींचना ।

Lucknow:
November 10, 1960.

I have seen some feats of endurance and strength displayed by Professor Rajbali Misra during one of my visits to Mirzapur in the recent past. I have no hesitation in saying that some of these feats were astounding indeed and I would not have believed that Professor Misra could have performed these feats if I had not seen them with my own eyes. I congratulate him on his success in acquiring such unusual powers through practice of Yoga and wish him prosperity and success in times to come.

(B.B. Lal)
Chief Secretary.

उत्तर प्रदेश के चीफ सेक्रेटरी श्री बी. बी. लाल के योगिराज के प्रति उद्गार।

KYODO TELEVISION COMPANY, LIMITED
25 SANBANCHO, CHIYODA-KU, TOKYO 102, JAPAN
SHUWA SANBANCHO BLD.
TELEPHONE:03-[illegible]

Varanasi
24th March 1983.

This is to certify that Prof.
Rajbali Misra ji performed various yogic feats very successfully and has really surprised us very much. We wish that Japanese audience can be shown his super feats also.

We wish him all the best health and a very long life.

Yours Sincerely
Mr Ryuji Egawa
Director.

Ryuji Egawa

टोकियो (जापान) टेलीविजन कम्पनी लि० के प्रतिनिधि ने 'संसार के महान साधक' कार्यक्रम के दौरान भारत की ओर से योगिराज को चयन किया, वाराणसी आकर इनसे भेंट की और इनके कुछ कार्यक्रमों को देखकर भूरि भूरि सराहना की।

HUKAM SINGH
SPEAKER, LOK SABHA

TELEPHONES
20 AKBAR ROAD
NEW DELHI
April 1, 1965

<u>TO WHOM SO EVER IT MAY CONCERN</u>

Shri Raj Bali Misar of Mirzapur gave a performance of physical feat and Yoga exercises in Vithal Bhai Patel House yesterday evening. A large number of Members of Parliament and others were present to witness the performance. Every one felt thrilled at the skill and sustenance that Shri Raj Bali Misar could exhibit in all the exercises. Such a man needs every encouragement. I believe these performances would give an encouragement to young and entertainment to others and therefore should be encouraged wherever it may be possible.

(Hukam Singh)
Speaker, Lok Sabha

सन् १९६५ लोकसभा के स्पीकर श्री हुकुम सिंह ने पर्याप्त आदर और प्रमाणपत्र देकर योगिराज को सम्मानित किया।

I greatly appreciated the strength and courage of Raj Bali Mishra who performed a number of feats for our benefit.

On Monday 12th September 1977 he had a test of strength against one of our jet boats. A strong rope came from the back of the boat and around the ends of a long plank staked to the ground. Raj Bali Mishra braced himself against the plank in the loop of the rope and was able to stop the jet boat moving even though Jon Hamilton applied full power for several seconds.

We must congratulate Raj Bali Mishra for his fitness and strength.

E. Hillary
Leader
"Ocean To Sky" Expedition

एवरेस्ट चोटी के द्वितीय विजेता एडमण्ड हिलारी ने अपनी जेट नौका रोके जाने पर योगिराज के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए उक्त वाक्य लिखे।

हमारे प्रकाशन की चर्चित कृतियाँ

हठयोगी विजय प्रकाश मिश्र का संक्षित परिचय

जन्म : ३० मई, १९६७

जन्म स्थान : मिश्रधाम, तिलठी, मीरजापुर

निवास : यौगिक क्रिया केन्द्र, अस्सी, वाराणसी

पिता : अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त योगीराज प. रामनाथ मिश्र

शिक्षा : एम.ए., योग शिक्षा बी.एच.यू., योगचेम्पियन, योगाचार्य, राष्ट्रीय निर्णायक, हठयोगी आदि अनेक योग प्रतियोगिताओं में एवार्ड प्राप्त।

रुचि : योग दर्शन के गहन अध्येता, वक्ता, लेखक एवं योग विशेषज्ञ के रूप में चर्चित।

मानवीय मूल्यों के स्थापना के लिए योग पर अनेक पुस्तक, योग मासिक पत्रिका की सुचारू रूप से देख-रेख जिसकी प्रबुद्ध वर्ग में काफी चर्चा रही है, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर अनेकों बार वार्ता एवं प्रदर्शन। आप ऋषि-महर्षियों के बीच 'हठयोग' क्रियाओं का प्रदर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त कर देश-विदेश की संस्था... उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग एवं पुलिस आदि जवानों को उत्साहित क... लगभग ३०० योग शिविर एवं हजारों अद्भुत यौ... ख्याति अर्जित कर चुके हैं।

आशीर्वाद प्राप्त ... पुलिस आदि जवानों को उत्सा... हजारों अद्भुत यौगिक क्रियाओं की

आपके प्रदर्शन निम्न...

1. नाड़ी गति रोकना।
2. हाथी के साथ रस्साकशी करके रोकना।
3. हवाई जहाज एवं पोत (शिप) को दांत व बाल से खीचना।
4. चलती हुयी दो जीपों या कारों को एक साथ रोकना।
5. भारी ट्रक सीने पर चढ़ाना।
6. जीप को बाल में बाँध कर खींचना।
7. दाँत से मोटर खींचना।
8. 300 किलो का पत्थर सीने पर रखकर हैमर द्वारा तोड़वाना।
9. बैनट का प्वाइन्ट आंख पर रखकर ... रॉड आंख से मोड़ना।
10. कांच के टुकड़े ...
11. कांच को हाथ से पीसना आदि।

पुस्तक प्राप्ति स्थान : ● यौगिक क्रिया ... अस्सी, वाराणसी, फोन : 0542-367017

● ग्रा. मिश्रधाम ... तिलठी मीरजापुर फोन : 0542-83365